Satya ka Avahan

सत्य का अवाहन

Invoking the Divine

Year 3 Issue 3 May–June 2014
Membership Postage: Rs. 100

Sannyasa Peeth, Munger, Bihar, India

Hari Om

Satya ka Avahan is a bi-lingual and bi-monthly magazine compiled, composed and published by the sannyasin disciples of Sri Swami Satyananda Saraswati for the benefit of all people who seek health, happiness and enlightenment. It contains the teachings of Sri Swami Sivananda, Sri Swami Satyananda and Swami Niranjanananda, along with the programs of Sannyasa Peeth.

Editor: Swami Yogamaya Saraswati

Assistant Editor: Swami Sivadhyanam Saraswati

Published by Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Fort, Munger – 811 201, Bihar.

Printed at Thomson Press India (Ltd), Haryana

© Sannyasa Peeth 2014

Membership is held on a yearly basis. Late subscriptions include issues from January to December. Please send your requests for application and all correspondence to:

Sannyasa Peeth
c/o Ganga Darshan
Fort, Munger, 811 201
Bihar, India

✉ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request

Front cover: Swami Niranjanananda Saraswati, Paduka Darshan, Munger

Plates: 1–8: Satyameshwar Mahadeva, Paduka Darshan, Munger

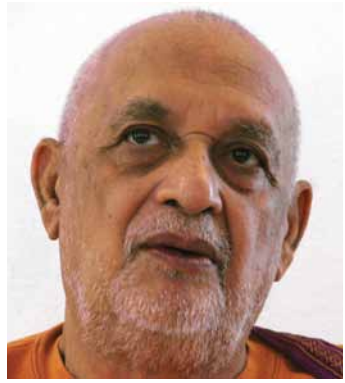

SATYAM SPEAKS – सत्यम् वाणी

Yes, do read the *Bhagavad Gita* whenever you get the time. But, my child, this life itself is a never-ending *Gita*. Study this wonderful life-Gita and put the same into practice.

—Swami Satyananda

हाँ, जब भी समय मिले भगवद् गीता जरूर पढ़नी चाहिए। लेकिन यह बात याद रखो कि तुम्हारी जिन्दगी खुद एक अन्तहीन, सनातन गीता है। इस अद्भुत जीवन-गीता का नित्य-निरन्तर अध्ययन करते जाओ और उसकी अमूल्य शिक्षाओं को आत्मसात् करो।

—स्वामी सत्यानन्द

Published and printed by Swami Shankarananda Saraswati on behalf of Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Fort, Munger – 811 201, Bihar.
Printed at Thomson Press India (Ltd), 18/35 Milestone, Delhi Mathura Rd., Faridabad, Haryana.
Owned by Sannyasa Peeth **Editor**: Swami Yogamaya Saraswati

Satya ka Avahan
सत्य का आवाहन
Invoking the Divine
Year 3 Issue 3 • May–June 2014

न तु अहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्तिनाशनम्॥

"I do not desire a kingdom or heaven or even liberation. My only desire is to alleviate the misery and affliction of others."

—Rantideva

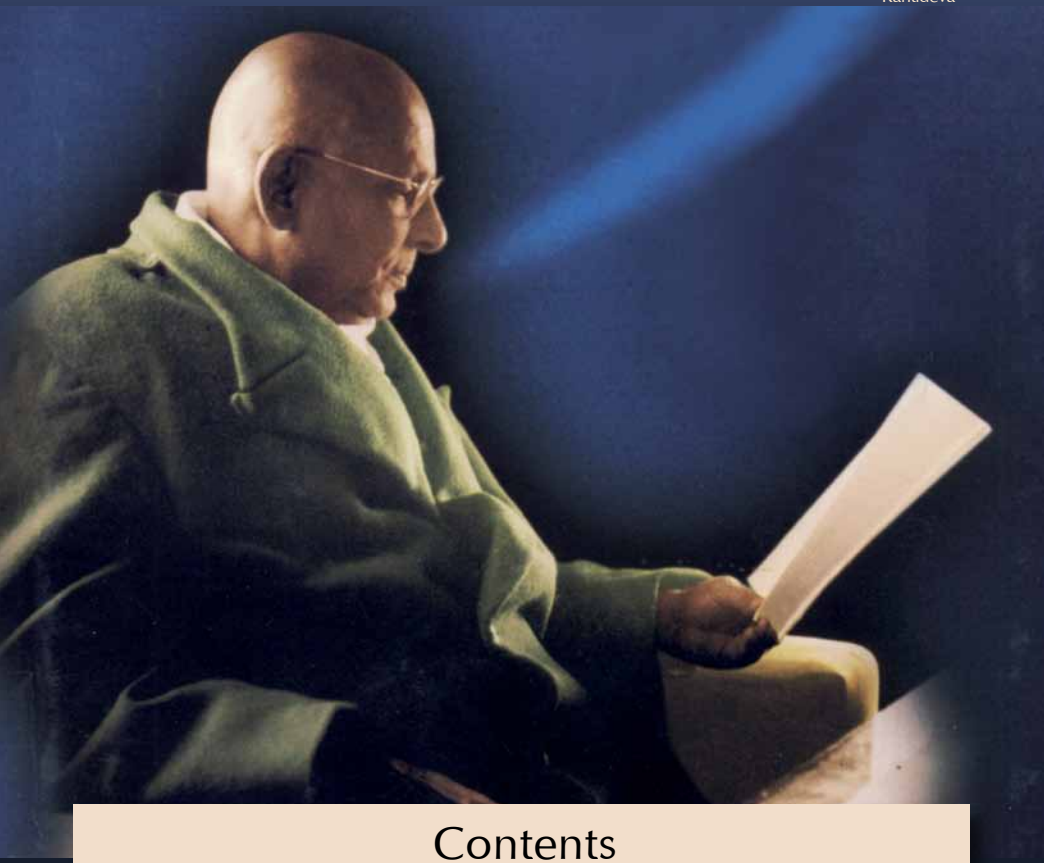

Contents

3 आत्म-विज्ञान
6 That Thou Art
10 आत्म-निरीक्षण
14 Discovery of the Self
18 स्वाध्याय का स्वरूप
19 Power of Reflection
21 शास्त्र-अध्ययन
24 Satyameshwar Mahadeva Arrives in Sannyasa Peeth
25 Practising Swadhyaya
28 मैं अब पूर्ण हूँ
29 The Path of Self-Enquiry
32 आत्म-साक्षात्कार
33 Two Levels of Swadhyaya
36 स्वान साधना से स्वयं को जानना
39 'The Lesson I Learnt in 2013'
40 The Universal Message of the Upanishads
36 प्रश्नोत्तर-रत्न-मालिका
47 Swadhyaya Meditation

Song of Sadhana

Purification, concentration, reflection, meditation,
illumination, identification, absorption, salvation.
These are the eight steps in spiritual sadhana.
Self-sacrifice, self-surrender, self-denial.
These are the different ways to slay this egoism.
Selflessness, self-restraint, self-purification,
self-analysis, self-introspection, self-examination.
All these will lead to self-realization.

—*Swami Sivananda*

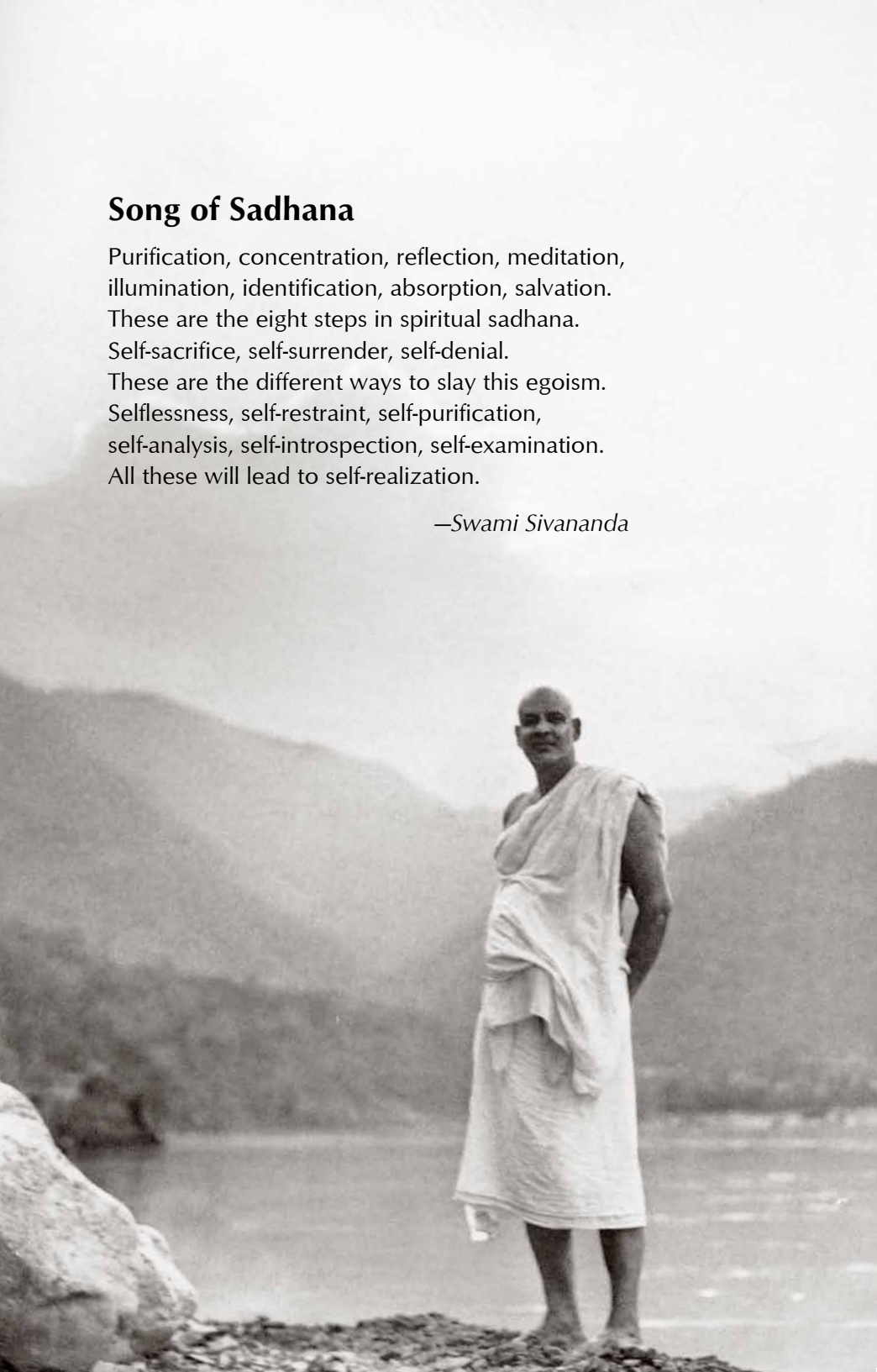

आत्म-विज्ञान

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अमरत्व की सन्तानों! तुमने अनेक विज्ञानों का अध्ययन किया है, किन्तु एक विज्ञान ऐसा भी है जिसके जान लेने से अदृश्य पदार्थ दृश्यमान हो जाते, अश्रुत गीत सुन लिए जाते और अज्ञात रहस्य जान लिए जाते हैं। वही विज्ञान सब विज्ञानों का विज्ञान है, जिसे आत्मविज्ञान कहते हैं। सुनते हैं कि उसी विज्ञान से हम आनन्दमय-अमर-जीवन और शाश्वत-शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं। उसे ही ब्रह्मविद्या कहा जाता है। ब्रह्म या आत्मा ही तो सभी नामों और रूपों का परमाधार है। वही मन, इन्द्रिय और प्राण को प्रकाश देता है। कहा है न उपनिषदों ने *'मनस: मन: प्राणस्य प्राण:।'* यदि उस विज्ञान को प्राप्त कर लोगे तो सभी दु:खों और भौतिक क्लेशों का निराकरण हो जाएगा; साथ-साथ आनन्द का अक्षय भण्डार भी आपको मिल जाएगा। जब तुम ब्रह्म के उस परम-विज्ञान का साक्षात्कार कर लोगे तो तुम्हारा मन सांसारिकता में लिप्त नहीं रहेगा, असन्तुष्ट भी नहीं रहेगा, क्योंकि ब्रह्म परिपूर्ण है। उस परमपद को प्राप्त कर लेने पर तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण हो जाएँगी और तुम कामनारहित अवस्था की प्राप्ति कर सकोगे, जिसे राजयोग में निर्विकल्प समाधि कहा गया है।

हमने यह शरीर इसी प्रयोजन के लिए धारण किया है। प्रत्येक मनुष्य के मन में आत्मा को प्राप्त करने के संस्कार वर्तमान हैं, आवश्यकता है तो पथ-प्रदर्शन की और लगन के साथ साधना की। सांसारिक चक्कर में फँसकर हम यह नहीं जान पाए हैं कि किस प्रकार परम-लक्ष्य की प्राप्ति की जाए। आज से हम पुन: जाग जाएँ और आत्म-साक्षात्कार के पथ पर निरन्तर अग्रसर होते जाएँ।

आत्मा की प्राप्ति कैसे की जाए, यह प्रश्न सभी के मन में आता है। तुम कितने ही बुद्धिमान् क्यों न हो, तुम्हारे पास कितना ही प्रचुर धन और लोकबल क्यों न हो, किन्तु जब तक तुम साधना नहीं करोगे, लगन के साथ आत्मा को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करोगे, तब तक अन्धकार में ही भटकते रहोगे। मैं तुम्हें ज्यादा पचड़े में नहीं डालूँगा। यदि सच पूछो तो मैं तुम्हारे भटकने का कारण भी अच्छी तरह जानता हूँ। कमी यह है कि तुम मन के कार्य-कलाप को समझने की चेष्टा ही नहीं करते और न तुममें साधना करने की तीव्र इच्छा ही है। वैसे तो सभी लोग यही चाहेंगे कि आत्मज्ञान हो जाए और वे जीवनमुक्ति का अनुभव करने लगें, किन्तु साथ-साथ वे अपने परिवार, अपनी समाज-प्रतिष्ठा और अपने वैभव को भी देखते रहना चाहेंगे। यही मनुष्य की कमी है। जिस प्रकार नाव को किनारे बाँधने पर उसे रात-दिन चलाने का भी कोई फल नहीं होता, उसी प्रकार अपना मन दुनियादारी में जकड़ कर नाममात्र

की साधना करना कोई मूल्य नहीं रखता। साधना का अर्थ तो यह है कि हम अपने अशुद्ध मन को शुद्ध करें और अपना ध्यान अधिक-से-अधिक परमात्मा की ओर लगाएँ। अपने दैनिक जीवन में 'भक्ति-भक्ति' पुकारना हमें तब तक शोभा नहीं देता, जब तक हम अपने हृदय में सचमुच परमात्मा की उज्ज्वलता के दर्शन न करें और जब तक हम अपने हृदय के परमात्मा को प्रत्येक रूप में रमा हुआ न जानें। 'मुँह में राम बगल में छूरी', यह योग नहीं है। इसे भक्ति और आध्यात्मिकता की संज्ञा देना हमारी मूर्खता ही होगी। हमारा जीवन नियमित होना चाहिए और सिद्धान्तों की आधारभूमि पर सुदृढ़ भी।

तुम लोग योग और आध्यात्मिकता का नाम सुनकर डरना नहीं। यह गलत धारणा है कि योग और आध्यात्मिकता मनुष्य को जंगली बना देते हैं और उसे संसार से दूर हटा लेते हैं। योग तो प्रत्येक स्थान में सिद्ध किया जा सकता है, किन्तु वह योग क्या है? वह है हमारे दैनिक जीवन में दिव्य गुणों का जागना। हमारे दैनिक जीवन से दुर्गुणों का भाग जाना, उनका अस्त हो जाना ही दुनियादारी से हट जाने का अर्थ है। यदि हम सद्गुणों का संचय करेंगे तो आत्मतत्त्व की प्राप्ति अवश्य कर सकेंगे। इसलिए हमें चाहिए कि हम स्थिरबुद्धि, निरहंकारिता, सरलता, ईमानदारी, भद्रता, दानशीलता और पवित्रता जैसे सद्गुणों का अभ्यास अभी से आरम्भ कर दें। वैसे तो एक ही गुण के विकास से तुम आनन्द और शान्ति का अनुभव कर सकोगे। ज्योंही एक-आध गुण विकसित हो जाएगा, त्यों ही तुम अन्य गुणों को स्वत: ही जाग्रत होता पाओगे।

अभी इन्द्रियाँ तुम्हें बार-बार विचलित करती रहती हैं। तुम छोटी-छोटी बातों को लेकर दु:खी या अति प्रसन्न हो जाते हो। अपनी चीजों के प्रति तो ममता और मोह के भाव रखते हो जबकि दूसरों की चीजों को लापरवाही से देखते हो। इस आदत को हटाना होगा। अपनी-परायी नाम की कोई चीज नहीं। यह तो स्वार्थ का उदाहरण मात्र है। यदि तुम सच्चे और ईश्वरीय गुणों का संचय करना चाहते हो, तो आज से ही तुम्हें परमार्थ के भावों से परिपूर्ण हो जाना होगा। याद रखो कि इस जगत् में कोई वस्तु ऐसी नहीं, जिसे तुम सदा अपनी कह सको। तुम्हारे पास धन-दौलत आती तो है, किन्तु चली भी तो जाती है किसी दूसरे के पास। पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री और नाती-पोते भी आते हैं, लेकिन सदा के लिए तुम्हारे नहीं बने रहते। इसी प्रकार दुनिया में प्रत्येक वस्तु तुम्हारी होते हुए भी सदा के लिए तुम्हारा साथ नहीं दे सकती। अत: उचित यही है कि उन नश्वर चीजों के मोह में न पड़ें और व्यर्थ की चिन्ता मोल न लें। जब तक कोई वस्तु हमारे पास है, उसका उचित व्यवहार करें और यह याद रखें कि किसी भी समय वह वस्तु हमारा साथ छोड़ सकती है। यदि मन में यह भावना सदा बनी रहेगी तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हम आज की तरह दु:खी, चिन्तित और सन्तापित नहीं होंगे।

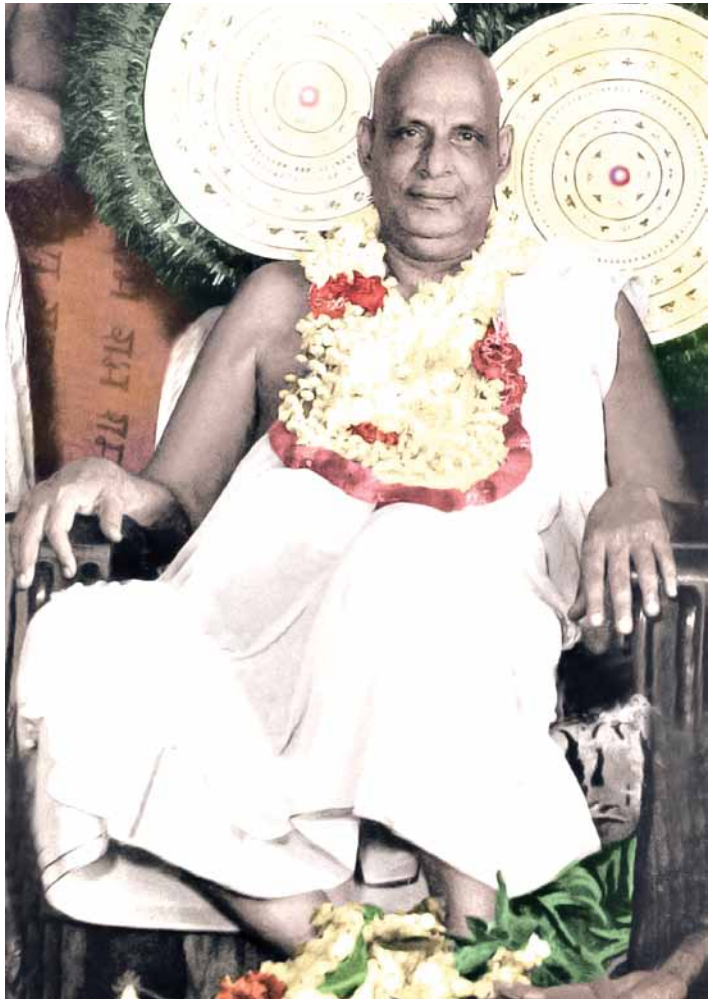

महाराजा जनक इसके ज्वलन्त उदाहरण थे। उन्होंने एक बार कहा था, *'मिथिलायां प्रदग्धायां न मे किञ्चित् विनश्यति'* अर्थात् मिथिला में आग लगी है तो मेरा क्या जाता है? इसका अर्थ यह नहीं कि महाराजा जनक लापरवाह थे, बल्कि इस उदाहरण का तात्पर्य है कि महाराजा जनक की अनासक्ति भावना परमार्थ के उस चरम-पद तक पहुँच चुकी थी, जहाँ वे जगत् की प्रत्येक वस्तु को अपना न जानकर प्रत्येक का जानते थे और उनको क्षणभंगुर समझते थे। यही निरासक्ति प्रत्येक मनुष्य में उदय हो तो मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मनुष्य-समाज के समस्त दु:खों की इतिश्री हो जाएगी। ■

That Thou Art

Swami Sivananda Saraswati

You are the ever-existent Atman, the immortal Self, full of knowledge and bliss. You exist even when the physical body is destroyed. In all beings, in the trees, in the lights, in tables and chairs, there is this one existence. A thing exists. A tree exists. A table exists. You can reduce this table to ashes; and yet it exists. Existence or *sat* is the reality.

Supreme innermost Self

You behold pots and cups; there must be a potter. There are tables and chairs; there must be a carpenter. You behold rice, utensils; there must be a cook to prepare the food. There is the airplane, the engine; there must be a driver. Even so, there must be a Supreme Driver, a driver of drivers, a Driver who drives the prana and the senses. That Supreme Driver is the Absolute or the Eternal. That is your real nature; without this Driver the prana and mind cannot function.

In the *Kenopanishad* the student asks: "By whom is this mind directed? By whom are the pranas and senses made to run towards the external objects and to perform their functions?" The mind would not function were it not for the consciousness and intelligence that it borrows from the Supreme Brahman, which is the basis and the source of the mind, prana and the indriyas.

Our seers and sages who have come face to face with the Supreme Brahman have given expression to their experiences in the Upanishads and other scriptures. You should study them, and then alone will you understand what the nature of the Atman is. He is beyond rajas and tamas. He is the light of lights, pure consciousness. He dwells within this bulb; therefore the bulb gives light. He dwells within this microphone; therefore it transmits sound. He is the innermost

self, *antaryamin*, inner ruler. That is your real nature. *Atma antaryatmyamritah* – "He is immortal, *amritam*." *Antaratma nitya shuddha buddha satchidananda* – "He is eternal, pure, illumined and of the nature of Existence-Knowledge-Bliss absolute."

Pure witnessing consciousness

He is beyond maya and her operations. A pure crystal is not affected by the colour of the red flower which is placed near it, though the colour is reflected on it. The sun which is the presiding deity of the eye is not affected by the defects of the eye. There is poison on the fangs of a cobra which will put to death anyone whom it bites; but the poison does not affect the cobra itself. Even so, the ever-pure Atma, which always exists and which is the only reality, is not affected by the imperfections of maya. There are fluctuations and changes in the mind, but the Atman which is the witness, silent *sakshi*, pure consciousness, is not affected by the taints of the mind.

The infinite Atma, which is not affected by the gunas, must be all-pervading. So it must be unchanging. It must be unborn. That which is caused is a modification; it cannot behold the original causeless cause. It is self-luminous; it gives light to the mind and the indriyas, sun, moon and stars. It is self-existent; it is the source of the entire universe. It must be infinite. Through logical argument you can arrive at the conclusion that the ever-self-luminous Atma, which is beyond time, space and causation, must be all-bliss and the embodiment of happiness and freedom. That is the Atma. That is the Absolute. That is the Eternal. That is your real essential nature.

When your ignorance is rent asunder, when you transcend the indriyas and the mind, just as the rivers join the sea and become one with it, you also will become united with the Supreme Self. In honey that is collected by the bees from various flowers, there is but one homogeneous mass of sweetness. Even so, all animals, human beings, plants – everything – will return to the Atma. There is no caste distinction there. It is homogeneous wisdom, perennial joy. That is your essential nature.

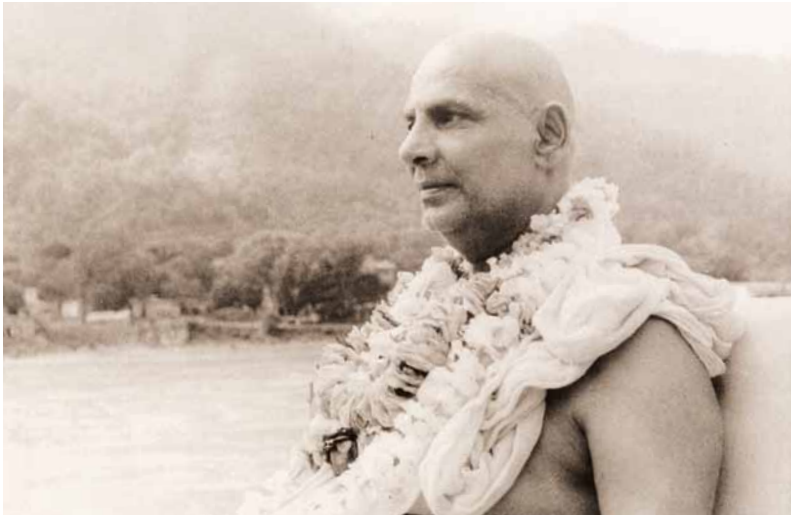

Study the self

So many sciences you learn at the university, but you are not aware of the science of sciences, Brahma vidya. Study that Brahma vidya and attain immortality in this very birth; no, this very second. It is easy of attainment by the sincere aspirant who is endowed with the four means of salvation: *viveka*, discrimination; *vairagya*, non-attachment; *shadsampatti*, the six-fold wealth of an aspirant; and *mumukshutva*, desire for liberation. Dispassion is most essential; dispassion is mental non-attachment. Vairagya should be born of discrimination. He who has discrimination is the real aspirant here. He can cross the ocean of birth and death. *Tarati shokam atmavi* – "He is free from grief and delusion." *Yasmin sarvani bhutani atmaivabhud vijanatah tatra ko mohah kah shoka ekatvam anupashyatah* – "Where is the grief, where is the delusion for one who beholds the One Self everywhere?" The world is Atma for him. That is the goal.

You must learn that Brahma vidya which enables you to attain this. At least first acquire a theoretical knowledge by studying the Upanishads, the *Gita* and the *Brahma Sutras*. Then practise; try to reach the goal. Gradually, even with faltering steps – you may fall down a hundred times, but try to stand up

again and plod on – reach the goal. Again and again do vichara. There may be many obstacles; because you have to fight against your old samskaras, the fight is tough and protracted. It may last until the end of your life. You must be a *dheera*, a man of forbearance, to carry on this adhyatmika battle. You must have patience, the patience of a man who in a rage wanted to empty the ocean with a blade of grass. You have to pay a heavy price, for you aim at the highest. You aim at attaining immortality, freedom, peace, bliss and perennial joy. ■

आत्म-निरीक्षण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दुनिया में कोई आदमी ऐसा नहीं है जो अपने को देख सकता है। हाँ, दूसरों को देखना सबको आता है। हमको मालूम है कि तुम्हारा चेहरा कैसा है, तुम्हारे बाल कैसे हैं, तुम्हारी नाक कैसी है, तुम कैसा बोलते हो, मीठा बोलते हो या कड़वा, अच्छा गाते हो या खराब, हमको यह सब मालूम पड़ जाएगा, मगर तुमको खुद कभी मालूम नहीं पड़ेगा। सबका यही हाल है। दुनिया में जितने जीव हैं, इस मामले में सब अज्ञान में हैं। मनुष्य स्वयं कैसा है, इसकी जानकारी दूसरे से होती है। जैसे चेहरे की जानकारी दर्पण से होती है, वैसे ही तुम्हारे स्वभाव की जानकारी निन्दा करने वाले से होती है। जो तुम्हारी आलोचना करता है, निन्दा करता है, वही तुम्हारे चेहरे का, स्वभाव का सही रंग बतलाता है। इसलिए कभी कोई कहे कि तुम ऐसा क्यों करते हो, तो उस समय प्रतिकार नहीं करना चाहिए, न ही अपनी सफाई देनी चाहिए। कहना कि हाँ, ऐसा है, फिर उस पर आत्म-निरीक्षण करना चाहिए।

आत्म-निरीक्षण के वक्त आदमी को अपने विवेक को जज बनाना पड़ता है, जो तुम्हारी तरफदारी न करे। वकील तरफदारी करता है, मगर जज तरफदारी नहीं करता। अपनी तरफदारी नहीं करनी चाहिए। इसको कहते हैं—स्व-आलोचना। ईसाई धर्म कहता है, 'अपनी आलोचना किया करो।' तुलसीदास जी ने भी कहा है—*'मो सम कौन कुटिल खल कामी।'* मतलब उन्होंने स्व-आलोचना को स्वीकार किया है। बहुत मुश्किल है अपना चेहरा देखना। जब दूसरे लोग तुम्हारी तारीफ करते हैं कि तुम बहुत सुन्दर हो, बहुत विनम्र हो, बहुत अच्छा गाते हो, बहुत अच्छा लिखते हो, बड़ा अच्छा स्वभाव है, बहुत अच्छे कार्यकर्त्ता हो, बहुत सज्जन हो, तो वह भी तुम्हारा चेहरा है। मगर जब तुम्हारी निन्दा की जाती है तब तुम्हारा चेहरा लटक जाता है, तुम अपने को बचाते हो, कहते हो, 'नहीं, नहीं, मैं कहाँ करता हूँ ऐसा। मैं किसी को बुरा नहीं कहता हूँ, मेरी आदत ही नहीं है किसी को बुरा-भला कहने की।'

आलोचना और प्रशंसा

आलोचना करने पर आदमी अपना बचाव ही करेगा, लेकिन जब उसको बोला जाएगा कि तुम बहुत अच्छा गाते हो, उस वक्त वह फूल जाएगा, उसमें अहंकार आ जाएगा। आदमी की ये दो बहुत बड़ी समस्याएँ हैं, आलोचना में बचाव और प्रशंसा में अहंकार। अब जैसे कोई लड़की बहुत अच्छा गाती है और उसे प्रशस्ति-पत्र मिल गया, पन्द्रह हजार रुपये का इनाम भी मिल गया, उसका नाम तक अखबार में छप

गया, तो इन सबसे मद आता है, घमण्ड आता है। मगर उसके बाद आलोचना सुन कर अपने को बचाने की प्रवृत्ति आती है। और दोनों ही गलत हैं।

आदमी को दोनों जगह अलग रवैया रखना पड़ता है। यहाँ सबसे बड़ी चीज है, चिन्तन और आत्म-निरीक्षण। अगर कोई कहे कि तुम बहुत अच्छा भाषण देते हो, बहुत अच्छा लिखते हो, बहुत अच्छे नेता हो, तो अपने मन में सोचना चाहिए, 'हाँ, मानते हैं ऐसा होगा। मगर देखो, गाँधीजी में कैसी नेतागिरी थी, तानसेन कैसा गायक था, महाराणा प्रताप कैसे योद्धा थे, शिवाजी कैसे कूटनीतिज्ञ थे, हममें तो वैसा कुछ नहीं है, हमको तो और आगे बढ़ना होगा।' आदमी को प्रशंसा में विनम्र होना चाहिए। बाहर से जो बोले सो बोले, लेकिन अन्दर भावना दूसरी होनी चाहिए। जब निन्दा होती है, आलोचना की जाती है, उस वक्त तुम्हारे मन में स्वीकृति आनी चाहिए, 'हाँ, यह सही है।' और जब तुम्हारी प्रशंसा की जाती है उस वक्त स्वीकृति नहीं होनी चाहिए, उल्टा सोचना चाहिए, 'ठीक है, स्कूल में इनाम मिल गया, पर इससे क्या होता है, दुनिया तो बहुत बड़ी है।' जैसे पेड़ फल लगने से झुक जाता है, उसी प्रकार जो गुणवान् व्यक्ति होते हैं, वे गुणों के कारण नम्र हो जाते हैं। जो आदमी दबना जानता है, वह दुनिया पर राज करता है। जो दबता है, उसके अन्दर बहुत दम होता है।

लेकिन जो मैं कह रहा हूँ, यह आसान नहीं है। यह एक बहुत कठिन चीज है। कबीरदास जी कहते थे–

निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन साबुन पानी बिना, निर्मल करे सुभाय॥

जो तुम्हारी आलोचना करे, उसको तुम अपने कमरे में रखो, ताकि वह बिना पानी और साबुन के तुम्हारा कपड़ा साफ कर दे। तुमको डिटर्जेंट और पानी की जरूरत नहीं है। पर ऐसा होता नहीं है। आदमी हमेशा अपनी बुराई करने वाले की उपेक्षा करता है और अपनी तारीफ करने वाले को अपने निकट रखता है। दुनिया में सब जगह ऐसा ही होता है।

स्वयं को दूसरों के माध्यम से जानना

सुकरात कहता था–स्वयं को जानो। उपनिषद् में कहा गया है– *आत्मानं विजानीमहि।* रमण महर्षि भी एक ही बात कहते थे। वे तो हिन्दी नहीं जानते थे, जब भी कोई उनके पास उपदेश के लिए जाता था, वे कहते– 'नान यार'– मैं कौन हूँ, यही विचार करो। अपने को जानो, अपने को पहचानो। अपने को पहचाने बिना ये चीजें बहुत कठिन हैं जीवन में। बहुत बार तुम परीक्षाओं से गुजरते हो। परिवार में, समाज में, संस्थाओं में बहुत परीक्षाएँ आती हैं। जहाँ भी जाओगे, चुनौतियाँ और परीक्षाएँ ही पाओगे।

आदमी को पहले अपने दोष देखने चाहिए। जब तुम्हें अपना दोष दिखेगा, तब तुम्हें पता चलेगा। दूसरे में दोष दिखे तो वही दोष अपने में खोजो।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिल्या कोई।
जो दिल देखा आपना, मुझ सा बुरा न कोई॥

संत-महात्माओं ने तो पहले इसका प्रयोग किया है। दूसरे के दोष देखने की बजाय आदमी को अपने में दोष देखना चाहिए। लेकिन ऐसा होता नहीं है। अगर तुम अपने में बहुत ज्यादा दोष देखोगे तो तुम्हारा आत्म-विश्वास कम हो जाएगा। तुम्हें यही लगेगा कि मैं नालायक हूँ। इसलिए अपने में दोष देखना, यह प्राकृतिक नियम नहीं है। प्रकृति ने एक नियम बनाया है कि अपना चेहरा अपने को नहीं दिखाई दे। प्रकृति ने यह नियम सबके लिए बनाया है। किसी व्यक्ति को अपने दोष, अपने दुर्गुण स्वयं खोजने पर भी नहीं मिलते। पहले तुम उन्हें दूसरे में देखते हो कि वह बहुत आलसी है, बहुत बोलता है, बड़ा अहंकारी है। तब तुम उन दोषों का विश्लेषण करते हो कि घमण्ड क्या है, ईर्ष्या किसे कहते हैं। ये सब चीजें पहले दूसरों में अध्ययन करोगे। अपने में नहीं मिलेंगी, चाहे तुम लाख कोशिश करो। मैं यहाँ मौजूद हर एक व्यक्ति

से खुले तौर पर कह सकता हूँ कि तुम कितनी भी कोशिश कर लो, तुमको अपने में कोई दोष मिलने वाला नहीं है। दोष तुमको दूसरे में ही मिलेगा।

यह प्रकृति का नियम है। पहले दूसरे में अध्ययन किया, तब तुमको अपने बारे में पता चला। तुमको कैसे पता कि आँख ऐसी होती है? तुमने दूसरे की आँख देखी, नाक देखी, होंठ देखे, बाल देखे, ललाट देखा, तब जाकर तुमको पता चला कि मेरा भी ऐसा ही होता होगा। प्रकृति ने अपने को जानने के लिए दूसरे को बनाया है। दूसरा आदमी तुम्हारा दर्पण है। वह तुमको बताता है कि गुस्सा क्या होता है। तुमको क्या मालूम कि गुस्सा क्या होता है। तुमको तब मालूम पड़ेगा जब तुम्हारे सामने दूसरा आदमी खूब गुस्सा करेगा। तब तुम सोचोगे, 'यह बड़े गुस्से में है, अच्छा तो गुस्सा इसको कहते हैं।' माता-पिता को देखकर सोचोगे, 'हमारे माता-पिता हमें बहुत प्रेम करते हैं, तो यह प्रेम है।' प्रेम क्या है, क्रोध क्या है, नफरत क्या है, यह तुम जिन किताबों से सीखते हो, वे किताबें हैं तुम्हारे आस-पास के लोग। तब फिर उस दोष को अपने में ढूँढना पड़ता है। इसके पहले अपने में बुराई खोजना गलत है। इसलिए पहले तुम दूसरे की निन्दा करते हो।

दूसरे की निन्दा करना एकदम स्वाभाविक है। यह मानव मन के विकास-क्रम में प्रकृति का नियम है। तुम शुरू में कैसे कह सकते हो कि हम नालायक हैं, जब तुम्हें यही नहीं मालूम कि नालायक कहते किसको हैं। खाली तुमने एक मत बना लिया कि हम नालायक हैं, किसी काम के नहीं हैं, बेकार हैं, बिना यह जाने कि इसका मतलब क्या है। उससे व्यक्तित्व को चोट पहुँचती है। और इसी तरह आदमी अपनी तारीफ भी करता है, मैं बहुत सुंदर हूँ, मैं बहुत अच्छा गाती हूँ, मैं बहुत अच्छी हूँ। लेकिन क्या तुम्हें मालूम है कि सुंदरता क्या है? सुरीला स्वर क्या है? अच्छाई क्या है? पहले तुम जानो कि सुंदरता क्या है, संगीत क्या है, अच्छाई क्या है, तब वह तुम्हें अपने भीतर मालूम पड़ेगा। नहीं तो, मैं बहुत अच्छी हूँ, यह अहंकार हो जाएगा। इसलिए जीवन को बनाने के लिए प्रकृति ने जो नियम तैयार किए हैं, उनको समझना चाहिए। कोई तुम्हारी आलोचना करता है, बुराई करता है, करने दो। चुप रहो। प्रतिकार मत करो। और जब तुम दूसरे की निन्दा करते हो, तब उस समय अपने भीतर खोजो कि कहीं मेरे में तो यह दोष नहीं है।

स्वयं को जानना दुनिया में सबसे मुश्किल चीज है। दुनिया में आदमी सब चीजें जान सकता है, लेकिन अपने को नहीं जान सकता। अपने को जानना ही आत्म-साक्षात्कार है। यह सामान्य उपलब्धि नहीं है, बहुत ऊँची उपलब्धि है। हम लोगों को अभी यह उपलब्धि नहीं हुई है। हम लोग सब गप्प लगाते हैं कि आप बहुत अच्छे हैं, बहुत पहुँचे हुए हैं। स्वयं को जानना जीवन की महानतम उपलब्धि है। उपनिषदों ने इसे आत्मज्ञान कहा, किसी ने ईश्वर-साक्षात्कार कहा। स्वामी शिवानन्दजी कहा करते थे, दोनों एक ही हैं, अपने को जानना और भगवान को जानना बराबर है। ■

Discovery of the Self

Swami Satyananda Saraswati

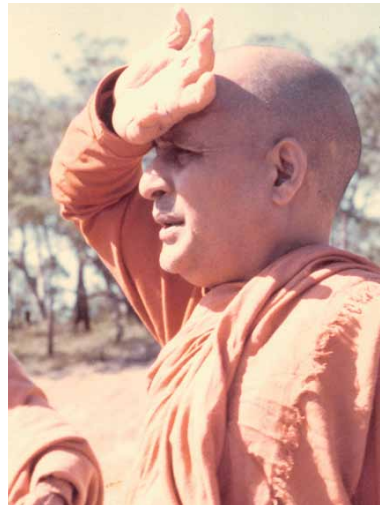

Life and man's consciousness are interacting with each other. Our external life, or our day-to-day life, is an expression of our minds and consciousness. This means that our pleasures, our joys, our depressions and our follies in life belong more to our inner life than to the events outside. Everybody's consciousness is constantly interacting with everything, with every person around him. This unbroken interaction between myself and everything around me is so consistent and so constant that all experiences are a combination of these two.

It is important to understand that everything, every expression and experience, emerges not from the object or the events outside, but from our own self. Therefore, everybody's experience, expression, reaction is not the same. As you have evolved, so you react. The reaction of an animal is different from the reaction of an intelligent person. The reaction of an intelligent person is different from the reaction of a wise man. In the same way, the reaction of a wise man is different from the reaction of a saint.

Therefore in yoga we have always been talking about the discovery of a higher quality of mind. We have been visualizing the possibility of a higher quality of reaction resulting from a higher quality of mind. The purpose is to have a better understanding, to have a better experience, to have a better attitude towards the whole of life around us. Man is

not happy just because everything is congenial. He is happy because he has discovered a new approach to life. Man is not unhappy just because everything is loaded against him. He is unhappy because his whole approach to life is so negative. Why should he have a negative approach while another person has a positive approach? That is because the mind is not an independent instrument of experience. It is guided either by the divine or the monstrous forces.

When you develop the inner self in you, it takes control of all your functions, and you are under the control of Spirit or the Self. I think that it is necessary for us to understand this important point. Life will go on as usual, and we will have to face things as we have been doing all along, so there is no use in criticizing life. There is no use feeling disappointed and dejected.

Nothing closer than the Self

In order to discover the Self you do not have to fight with anything because it is already within you. In fact, there is nothing closer than that Self. The Atman I am talking about is closer than your own breath, closer than your own mind. It is much closer than your own feelings, still, there is a blockage somewhere. That is why, even though it is very close to you, you do not experience it. It is so radiant and still you do not see it. It is so real and yet you do not have a concept of it. When you compare them with the Self, the senses are not real, the mind is not real, and the *buddhi* or intellect is not real, but what a tragedy it is that we can experience the unreal yet we cannot experience the real.

It seems that all of us are under hypnosis, or there is some sort of delusion taking place within us. We are able to experience the clamour of the senses in the body which have no luminosity; we are able to experience the oscillating, vacillating and dissipating mind which also has no luminosity. They are not independent entities. The body is a composition. It is not homogeneous. The senses are compositions and the mind is a

composition. None of these are homogeneous. How peculiar is it that we do not experience all the time? In dreams we do not experience the outer world. In deep sleep we do not experience at all. This means that these instruments are not eternal. Do you not think that the mind is an idea? Do you not think that sense experience or the senses themselves are an idea? Maybe the mind, the senses and the body are just ideas? I am not talking of philosophy, I am talking science. I think that objects, senses and mind are the qualities of man's ignorance.

Discovering the Self

Now, the Self is what we have to discover, but there is a difficulty. The difficulty is how to discover it. If you want to discover it with the mind, well, we have already said that it is not a subject of the mind. Mind is finite and the Self, the Atman, is infinite. How can you understand, realize or discover the infinite with the finite? The difficulty has always been felt by everybody who has tried to discover the Atman or the Self.

There is a very important text called the *Kenopanishad*. It is one of the oldest texts dealing with the difficulty of discovering the Atman. After discussing this problem in detail it has come to one conclusion: withdraw the mind, withdraw the prana, disconnect the sensorial channels and develop *shoonyata*, void, nothingness. That is a state where there is no experience, a state where there is no perception, a state where there is no cognition, a state where you do not exist for a period of time. That radiant experience is the discovery of the Self. In the beginning it is just an experience. Have this experience again and again. It becomes a pervading force. It gets saturated into the whole being. Your senses are controlled by that. Your mind is controlled and guided by that.

I have always been thinking that there is something beyond matter, beyond energy, beyond force, and something beyond light. What could it be? Nothing! And that nothing is everything! Experience that silence. Experience that nothingness. Experience that death. After that you are reborn.

Join the galaxy of the liberated

Nobody will see that you have changed. You take your car and go to your office, you do your typing, you deal with cash, you run a hotel, you may do whatever you like; nonetheless, a total change has taken place. Now you have discovered your Self, and in the light of this discovery of the Self you are participating in this great drama of creation. You realize yourself as part of this Universal Being, and everything is a matter of happiness. Somebody criticizes you, well, that is another way of loving you. You are sick or you are ill and weak, that is another way of taking a complete rest.

Now everything that happens in life leads to a positive experience in you. That is how thousands of people have lived in the past in a particular galaxy, the galaxy of the liberated saints and swamis. I think we want to join that galaxy because it is such a nice one, where everything has a positive meaning. All this experience is necessary; sickness is necessary, love is necessary, but that galaxy of the liberated is what has to be attained to transcend the negative influence of the mind on the experiences of life. ■

स्वाध्याय का स्वरूप

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग दर्शन में पाँच नियम आते हैं—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। ये पाँच नियम जीवन को व्यवस्थित और अनुशासित करने के लिए हैं, जीवन की प्रक्रियाओं को समझने और जानने के लिए हैं। इन पाँच नियमों में एक है स्वाध्याय। स्वयम् का अध्ययन, खुद को जानना स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय के नाम पर बहुत-से लोग कह देते हैं कि आध्यात्मिक ग्रंथ पढ़ने चाहिए, धर्म-शास्त्र पढ़ने चाहिए, गीता पढ़नी चाहिए, उपनिषद् पढ़ने चाहिए, और इस तरह स्वाध्याय का मतलब बाह्य अध्ययन से लगाया जाता है। शास्त्र-अध्ययन को ही स्वाध्याय कहा जाए, यह इसका केवल एक पक्ष हुआ। लेकिन अगर शब्दों को ठीक से समझा जाए तो स्वयम् का अध्ययन स्वाध्याय कहलाता है। तब आत्म-परीक्षण, आत्म-निरीक्षण, आत्म-चिंतन और आत्म-शोधन स्वाध्याय के अंग बनते हैं।

सामान्य रूप से लोग स्वाध्याय को ज्ञान अर्जित करने का साधन मानते हैं। शास्त्रीय ज्ञान को तो लोग अर्जित कर लेते हैं, लेकिन अपने बारे में, अपने व्यवहार को, अपने मन को, अपनी इच्छाओं को, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को नहीं जान पाते हैं। अपनी इच्छाओं, कमजोरियों, सामर्थ्यों, प्रतिभाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को जानना, समझना और उन्हें व्यवस्थित करना, यह असली स्वाध्याय है। स्वयम् का अध्ययन करके अपने आप को व्यवस्थित करना स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ होता है। एक बार जब यह प्रथम चरण पूरा होता है, तब जाकर मनुष्य फिर आध्यात्मिक विद्याओं का भी अध्ययन कर सकता है, अपने आपको प्रेरित करने के लिए, अपने ज्ञान और अनुभव को बढ़ाने के लिए। ■

Power of Reflection

Swami Niranjanananda Saraswati

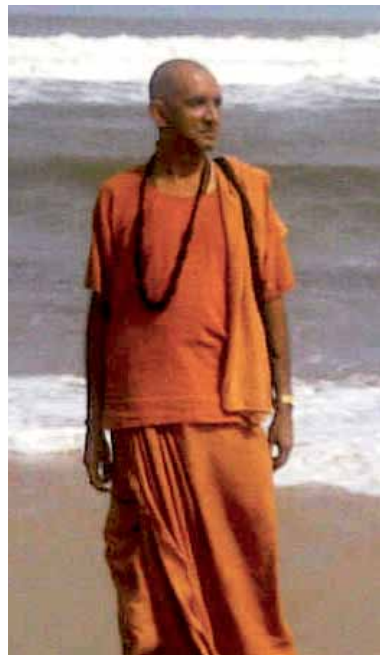

Enquiry and reflection is known as *atma vichara.* The purpose of this reflection is to dispel the cloud of ignorance and to cultivate a better understanding. Otherwise, what is the use of reflecting? What is the use of thinking? When you reflect, you tend to brood over your problems, rather than searching for a solution. Under the normal conditions in life, if there is a thought process or any kind of reflection, then it is always about your suffering or about what you do not have, what is called the 'worry factor'.

In your life, reflection is not pure. Reflection takes on the garb of worry instead. When reflection takes on the garb of worry, you identify with and go deeper into a state of mind from which you cannot extract yourself. You cannot be natural, free and spontaneous, and instead you get caught in the vortex of that one thought, that one idea, that one feeling, that one sentiment, that one emotion, and it sucks you down. It takes you down; as you get sucked into that vortex of worry, wisdom and knowledge disappear and you encounter more darkness. It is like diving down deep into the ocean. If there is a vortex in the ocean and you get caught in it, you simply go down. You leave the sky, the sun and the wind above, and you become surrounded by water and suffocate in it. That

is *avidya*. That is ignorance. The negative aspect of reflection always pulls you down into a deeper state of ignorance.

Reflection is the antidote. Instead of worrying about something, reflect upon it. Find out what the solution to the problem can be. Instead of worrying that 'I am like this and like that', reflect on how you can cultivate your strengths so that you aren't 'like this and like that'. Find out how you can be something different and better. Through reflection, guilt and ignorance can be avoided, and clarity of mind can be maintained. With clarity of mind comes wisdom. With clarity of mind comes knowledge. That wisdom and knowledge become *atma vichara*, reflection on one's own self.

In worry, anxiety and frustration, there is always a reaction and no reflection. Reflection happens when you are able to see the situation in a different form, a different light. When you are able to analyze the nature, then you can also discover the truth of a situation. For instance, if someone complains about someone else, you may be able to see that the person is speaking out of jealousy. Therefore it is not the other person who is at fault; it is the person who is complaining who is at fault. That is reflection and of course the idea of reflection can go much deeper.

The idea of reflection is keeping your focus in front of you all the time and not being swayed by the influences that surround you. You utilize your wisdom and knowledge, and you dispel from your life the cloud of ignorance that makes you do the wrong thing and reap a negative result. If you can become aware and cultivate this understanding, cultivate the quality of knowing and observing, then that becomes the stepping stone that will lead you to a relationship between you, nature and the divine. You discover a connection, a link between the three, and the sensorial links are severed. In the course of time, this reflection becomes *jnana*, wisdom. It becomes the realization of 'What I am'. With this realization, avidya disappears. ■

शास्त्र-अध्ययन

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥16.23॥

'जो पुरुष शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न सुख को और न ही परमगति को।'

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥16.24॥

'इसलिए तुम्हारे लिए इस कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण हैं। ऐसा जानकर तुम शास्त्रविधि से नियत कर्म ही करने योग्य हो।'

धर्म के विषय में बुद्धि को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। अविकसित मनुष्य अपने लिए उचित-अनुचित का सही फैसला नहीं कर सकते। धर्म के विषय में शास्त्र ही प्रमाण हैं। शास्त्रों के अतिरिक्त ज्ञान के किसी अन्य स्रोत द्वारा आप धर्म की बारीकियों के बारे में नहीं जान सकते।

श्रुति एवं स्मृति

सनातन धर्म के दो प्रामाणिक स्रोत हैं–श्रुति एवं स्मृति। श्रुति का शाब्दिक अर्थ है 'जो सुना गया' तथा स्मृति का अर्थ है 'जो स्मरण रखा गया'। श्रुति उद्घाटित ज्ञान है, स्मृति पारम्परिक ज्ञान।

श्रुति प्रत्यक्ष अनुभव है। महान् ऋषिओं ने धर्म के शाश्वत सत्यों को सुना और उनका लिखित प्रमाण भावी पीढ़ियों के लिए छोड़ गए। इन्हीं लिखित प्रमाणों से वेदों और उपनिषदों का संकलन हुआ। अत: श्रुति प्राथमिक प्रमाण है। स्मृति उस अनुभव का अनुस्मरण है। अतएव यह एक परोक्ष प्रमाण है। स्मृतियाँ भी ऋषियों द्वारा लिखे गये ग्रन्थ ही हैं, लेकिन वे अन्तिम प्रमाण नहीं हैं। यदि किसी स्मृति में कुछ ऐसा है जो श्रुति का खण्डन करता है, तो उस स्मृति को अस्वीकार किया जायेगा। भगवद्गीता एक स्मृति है। इसी प्रकार महाभारत भी एक स्मृति है।

स्मृतियाँ वे प्राचीन, पवित्र धर्म-संहिताएँ हैं जो सनातन वर्णाश्रम धर्म से सम्बन्ध रखती हैं। वे उन धार्मिक सिद्धान्तों एवं कर्मकाण्डों की सम्पूर्ति एवं व्याख्या करती हैं जिन्हें वेदों में विधियाँ कहा गया है। स्मृतियाँ वेदों के उपदेशों पर आधारित हैं। प्रामाणिकता की दृष्टि से स्मृति का स्थान श्रुति के बाद है। यह सनातन धर्म की व्याख्या एवं उसके उन नियमों को निर्धारित करता है जो हिन्दुओं के राष्ट्रीय, सामाजिक,

पारिवारिक एवं व्यक्तिगत दायित्वों को व्यवस्थित करते हैं।

मुख्य स्मृतियाँ अथवा धर्म-शास्त्र अठारह हैं। सर्वाधिक महत्त्व वाले मनु, याज्ञवल्क्य एवं पराशर के हैं। शेष पन्द्रह विष्णु, दक्ष, अपस्तम्ब, समवर्त, व्यास, हरित, शततप, वशिष्ठ, यम, गौतम, देवल, शंख-लिखित, उशना, अत्रि तथा शौनक के हैं।

मनु के नियम सत्य युग के लिए थे, याज्ञवल्क्य के त्रेता युग के लिए, शंख-लिखित के द्वापर युग के लिए तथा पराशर के वर्तमान कलियुग के लिए हैं।

जो नियम और कानून तात्कालिक सामाजिक स्थिति पर पूर्णतया आधारित हैं, उन्हें देश और काल की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार अवश्य बदलना चाहिए। तभी समाज की प्रगति सुनिश्चित हो पाएगी। आधुनिक युग में मनु के कुछ नियमों का पालन सम्भव नहीं। हम उनके अभिप्राय को समझ सकते हैं, परन्तु अक्षरश: उनका पालन नहीं कर सकते। समाज विकास कर रहा है। अपनी विकास-यात्रा के क्रम में यह ऐसे कई नियमों को पार कर जाता है जो इसके विकास की एक विशेष अवस्था में मान्य एवं सहायक थे। अब अनेक नवीन परिस्थितियाँ अस्तित्व में आ गई हैं जिनके बारे में पुरातन स्मृतिकारों ने चिन्तन नहीं किया था। अब लोगों से उन प्राचीन, अप्रचलित नियमों का पालन करने को कहना व्यर्थ है।

हमारा आधुनिक समाज काफी बदल चुका है। इस युग की आवश्यकताओं के अनुरूप अब एक नवीन स्मृति का आना अत्यावश्यक है। किसी अन्य ऋषि को आज एक नवीन, समयानुकूल धर्मसंहिता अवश्य प्रस्तुत करनी चाहिए। इस भावी ऋषि का हार्दिक अभिवादन!

शास्त्रविहित धर्म और अन्तरात्मा की आवाज

अब मैं अन्तरात्मा की आवाज पर चंद शब्द कहूँगा। कुछ लोग कहते हैं, 'हम अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनकर ही अच्छे और बुरे, सही और गलत को जान लेते हैं। हमें शास्त्रों और धर्मग्रन्थों की आवश्यकता नहीं।' लेकिन वास्तव में कोई भी व्यक्ति केवल अन्तरात्मा की आवाज के सहारे उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पायेगा।

अन्त:करण की आवाज कुछ संकेत अवश्य दे सकती है, लेकिन कठिन एवं कष्टकर परिस्थितियों में इसकी सहायता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। यह एक अचूक मार्गदर्शक नहीं है। मनुष्य का अन्त:करण शिक्षा एवं अनुभवों के साथ परिवर्तित होता है। यह व्यक्ति की बौद्धिक अवधारणा मात्र है। व्यक्ति की अन्तरात्मा उसकी प्रवृत्तियों, अभिरुचियों, शिक्षा, रुझानों, आदतों एवं वासनाओं के अनुसार बोलती है। एक असभ्य जंगली के अन्त:करण की भाषा किसी सभ्य शहरी की भाषा से बिल्कुल भिन्न है। एक भौतिकवादी यूरोपियन के अन्त:करण की भाषा एक उदात्त भारतीय योगी के अन्त:करण की भाषा से बहुत अलग है।

किसी ड्राइवर से पूछिये, 'तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है?' तो वह कहेगा, 'मुझे प्रतिदिन बीस रुपये किसी भी प्रकार कमाने हैं। मुझे दस लीटर पेट्रोल, टायर, ट्यूब और मोबिल खरीदना है। टायर बहुत मंहगे हैं। मेरी छ: बेटियाँ और पाँच बेटे हैं जिनकी मुझे देखभाल करनी है।' यदि आप उससे ईश्वर, नैतिक गुणों, बन्धन-मोक्ष, भले-बुरे, धर्म-अधर्म के बारे में कुछ भी पूछें तो वह हक्का-बक्का रह जाएगा।

एक ही जाति, धर्म और पंथ के दो व्यक्तियों के अन्त:करण की आवाज में इतना अन्तर क्यों है? एक ही जिले, एक ही समुदाय के दस लोगों में हम दस प्रकार के मत क्यों पाते हैं? मनुष्य को उचित-अनुचित, भले-बुरे, धर्म-अधर्म तथा जीवन के अन्य कर्त्तव्य समझाने के लिए केवल अन्त:करण की वाणी पर्याप्त मार्ग-निर्देशन नहीं कर सकती। शास्त्र एवं सिद्ध महापुरुष ही मनुष्य का अपने कर्त्तव्यों के कुशल निष्पादन में सही पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं।

प्रिय मित्र, अपने कर्त्तव्यों का उचित ढंग से निर्वहन कीजिये। जहाँ भी आपको शंका हो, शास्त्रों एवं महात्माओं से परामर्श लीजिये। अधिकांश लोगों में शास्त्रों में दिये गये नैतिक सिद्धान्तों एवं नियमों के बारे में सोचने की न तो योग्यता है और न ही उनके पास इसके लिए इतना समय है। इसलिए आप *महाजनो येन गत: स पन्था:* के सूत्र का अनुसरण करते हुए सन्त-महात्माओं से निर्देश प्राप्त कर उनका अक्षरश: पालन कीजिए। विकास और उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए अन्त में सच्चिदानन्द आत्मा का साक्षात्कार कीजिये! ■

Satyameshwar Mahadeva Arrives in Sannyasa Peeth

An auspicious start to Swamiji's panchagni sadhana this year took place with the arrival of Satyameshwar Mahadeva. A three-feet tall black Shivalingam, he was installed on a special platform overlooking the Ganga at Paduka Darshan with the chanting of specific mantras, havan, abhisheka and pooja in a ceremony lasting three days, from 12th to 14th January, by pandits who came from Kashi Vishwanath for this purpose.

Introducing the new form of Shiva to everyone, Swamiji said, "The spirit of Shiva in this Shivalingam is dedicated to the fulfilment and completion of Sri Swamiji's vision and sankalpa. It is his strength that will now guide the process, the development and growth of the third mission of Sri Swamiji: Sannyasa Peeth." He said, "This mahalinga is dedicated to Sri Swamiji, therefore his name will be Satyameshwar Mahadeva, Mahadeva who is the lord of Satyam. Sri Swamiji's ishta devata was Lord Mrityunjaya, and this is a mirror replica of Lord Mrityunjaya. The name also indicates the three qualities that Mahadeva has: Satyam, Shivam and Sundaram, and Satyam is also the name of our Guruji."

Describing the process of invocation and installation, Swamiji said, "Yesterday it was as if he took birth and the newborn baby was given a bath with eighty-one different herbs, with *anna*, grains, flowers, fruit and ghee. Then he was put to sleep; the bed was made, the pillow was kept in place, the covers were placed on him, and he slept like a baby. This morning he was woken up after a pooja. You know how children are always cranky when they wake up. A mirror was put before him so he could see his own cranky face, smile at himself and become happy. After that havan was performed for invoking the *shaktis*, powers that are inherent in Shiva. Thereafter the *sthapana*, *pratishtha*, or establishment, was completed. The touch represented the awakening of all the different senses. Finally, prana shakti was invoked in him, and now he is alive, he is awakened. To conclude, I have to tell him his name, by whispering it in his ear."

Hara Hara Satyameshwar!

Satyameshwar Mahadeva arrives in Sannyasa Peeth at Paduka Darshan

Invoking Satyameshwar Mahadeva with abhisheka
of eighty-one herbs during the installation ceremony

Havan in honour of Satyameshwar Mahadeva

Satyameshwar Mahadeva receives an offering of flowers, fruit, nuts, tulsi and bilva leaves

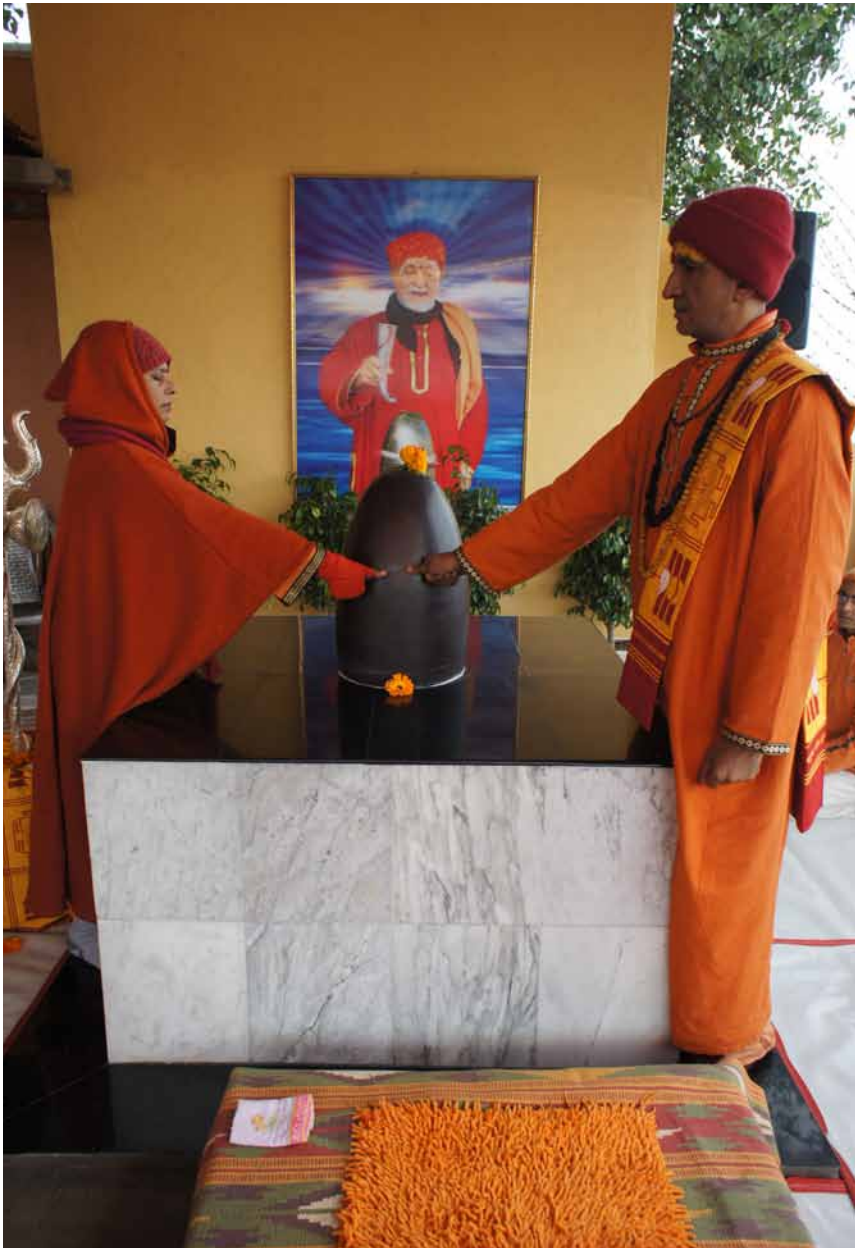

With touch, Satyameshwar Mahadeva's senses are awakened

A bath of oil during the abhisheka as Mahamrityunjaya havan is conducted

Whispering the name in Satyameshwar Mahadeva's ear

Satyameshwar Mahadeva presides over Sannyasa Peeth

Practising Swadhyaya

Swami Sivananda Saraswati

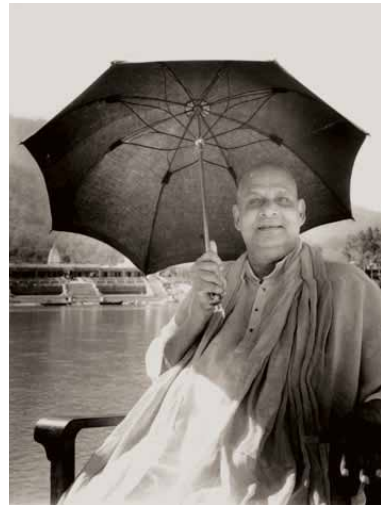

To complete the process of sadhana takes a long time, and even to become established in the preparatory steps takes a significant period. Even then, when one feels that the highest truth is within one's grasp, one must be vigilant. If the aspirant relaxes vigilance for a moment and falls into a spiritual or ethical slumber, the lower mind will assert itself. Vigilance needs to be maintained until one actually lives the highest truth at every moment. It is not enough if the light of truth merely illumines a dark corner of one's sadhana. One of the most powerful methods of keeping the mind fully alive to the purpose of sadhana is *swadhyaya*, self-study.

Sublime scriptures

One aspect of swadhyaya practice is daily study of the scriptures and the lives of saints; a half an hour each day is recommended. When reading the lives of saints and spiritual books, a host of powerful and positive ideas are fed into the mind and the mental powers are sharpened. They inspire and give the courage to conquer the lower tendencies in everyday life. Therefore, swadhyaya should not be given up for even a single day by a sadhaka, no matter how evolved he may be.

Learn a lesson from the illustrious examples of great sages. Be forever a sadhaka, an aspirant thirsting after spiritual knowledge; a student, eager to listen to the stories

of the Lord or to spiritual discourses. Preserve within the youthful zeal and devout eagerness to practise sadhana and to realize more deeply the inexhaustible spiritual truth extolled and expounded by the saints, sages and seers from time immemorial.

How many sublime thoughts are brought to one's very door by the scriptures! Study carefully and systematically the *Bhagavad Gita*, *Ramayana*, *Srimad Bhagavatam*, *Vishnu Sahasranama*, *Lalita Sahasranama*, *Aditya Hridayam*, the Upanishads, *Yoga Vasishtha*, the Bible, Zend Avesta, the Koran, the Tripitaka, the Guru Granth Sahib, etc. Underline the sentences that have a direct bearing on your life. Reflect on them in moments of leisure. Read and reread the same spiritual sentences over and over again until they are indelibly engraved in the heart, and practise them in action until they become part and parcel of everyday behaviour.

Elevate the soul by daily introspection

Swadhyaya is also introspection and self-analysis. Be cautious, vigilant and circumspect. Watching the mind is introspection. One in a million undertakes this beneficial, soul-elevating practice or discipline. People are immersed in worldliness and have no time to think of the soul or higher spiritual matters. The sun dawns, the mind runs in its usual sensual grooves of eating, drinking, amusement and sleeping. The day has passed. In this way the whole life passes away. There is neither moral development nor spiritual progress.

Daily self-analysis and self-examination is an essential aspect of swadhyaya sadhana. Only then can the sadhaka obviate his defects and progress in sadhana. A gardener watches the young plants very carefully, removes the weeds daily, erects a strong fence around them and waters them daily at the proper time. Only then do they grow beautifully and yield fruit quickly. In the same way, the sadhaka should find out his defects through daily self-analysis and then eradicate them through suitable means. If one method fails, he must take

recourse to a combined method of prayer, satsang, pranayama, meditation, dietary regulation, self-enquiry, and so on.

Not only do the big waves of pride, hypocrisy, passion and anger that manifest on the surface of the conscious mind need to be eradicated, but also their subtle impressions that lurk in the corners of the subconscious mind. Only then is the sadhaka safe. These subtle impressions are very dangerous, lurking like thieves and attacking the aspirant when he is a bit careless, when he slackens his daily spiritual practices a bit and when he is provoked. If these defects do not manifest even under extreme provocation on many occasions, even when one is not practising daily introspection and self-analysis, rest assured that the subtle impressions are also obliterated.

The practice of swadhyaya through introspection and self-analysis demands patience, perseverance, tenacity, application, iron determination, subtle intellect and courage, but will yield a fruit of incalculable value. That fruit is immortality, supreme peace and infinite bliss. The sadhaka will have to pay a heavy price for this. Therefore, do not grumble when practising this aspect of sadhana every day. Rather, apply the mind, heart, intellect and soul fully to this sadhana. ■

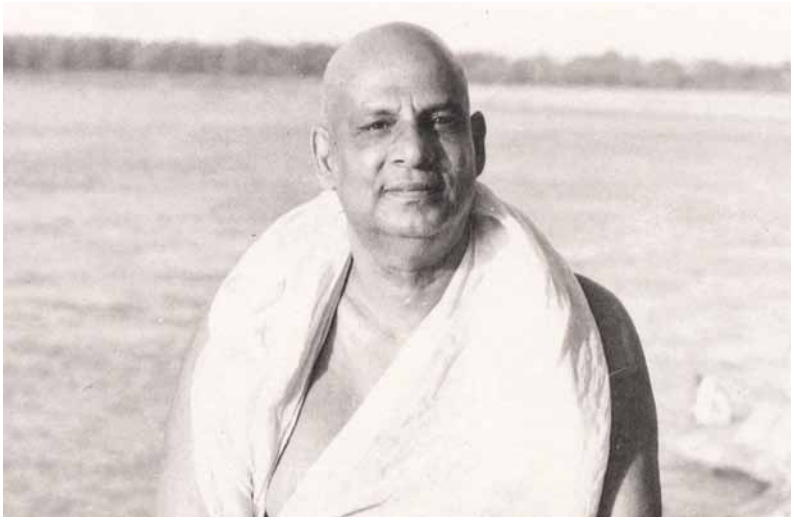

मैं अब पूर्ण हूँ

मुझे ब्रह्मविद्या का रहस्य ज्ञात है,
मैंने अपने तात्त्विक स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है।
माया मुझसे छिपती फिर रही है,
अपना चेहरा वह मुझे नहीं दिखा सकती।
उसे मेरे सामने आने में संकोच लगता है।
मैं स्वयं सर्वव्यापक अनन्त सत्ता हूँ–
तो अब मैं कहाँ जाऊँ!
मैं स्वयं आप्तकाम हूँ,
समष्टि मेरे अधिकार में है।
परिपूर्णता के अनुभव द्वारा
मेरी समस्त कामनाओं की पूर्ति हो गयी है।
तो अब किस पदार्थ की कामना करूँ!
किस वस्तु को ग्रहण करूँ!
क्या कार्य करूँ अब!
क्या उपलब्ध करूँ!
किसे खोजूँ अब!
मैं पूर्ण हो गया हूँ।
मैं प्रज्ञाशील चिद्घन हो गया हूँ।
तो क्या पढ़ूँ अब!
केवल मैं ही मैं हूँ।
तो अब किसके समक्ष भाषण दूँ!

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

The Path of Self-Enquiry

Swami Satyananda Saraswati

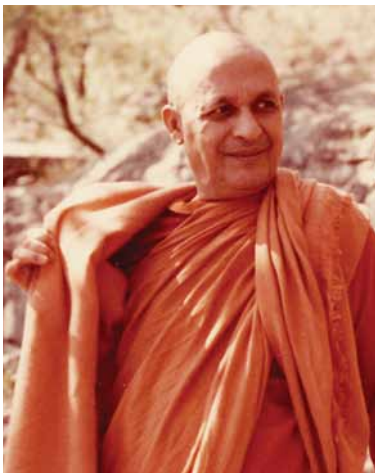

If you want to go into the path of self-enquiry, the Upanishads are your textbooks. The Upanishads talk about *Brahma vidya*, the knowledge of the Ultimate Reality, and they talk about a process of inner awareness. The Upanishads are dialogues between the guru and disciple. In one Upanishad, Indra, the king of the divines, and Virochana, the leader of the demons, go to the guru for instructions. He says, "Question yourself 'Who am I?' And then say, 'I am Brahman.' That is all."

Both of them go away. The king of the demons is thinking in his mind, 'I am Brahman, I am supreme.' As he drinks water from a pond he begins to think, 'Brahman has a big mustache. Brahman has very good biceps. Brahman has a very strong chest.'

Indra travels his own way. He begins to think, 'Who am I? My guru said that I am that reality, but how can that be? I am a slave of desires. I am a slave of pleasures. This body is mortal, these habits are rascals. How can Brahman be this? No, this body is not Brahman. No, the senses are not Brahman, this mind is not Brahman.' This is how he goes on negating.

Now, these two people develop this philosophy in their own way. Virochana goes back to his tribe and says, "I am Brahman." And they all say, "Yes sir, you are Brahman." Then somebody asks, "Is there no God?" Virochana says, "No, because my guru said, 'You are Brahman,' so from today I am

the final reality." These people became the forerunners of the materialistic civilization.

On the other hand, Indra goes on doubting and doubting. He goes to his people and they ask, "What did your guru tell you?" He says, "You are That." They ask, "What do you think about it?" He says, "I can't understand it. How can this body be the ultimate? How can these senses be the ultimate? How can this mind be the ultimate? They are conditioned, but the Ultimate is not conditioned! Then who am I?" He goes on contemplating and contemplating, and finally he realizes the truth.

With a disciplined mind, with a mind freed from unnecessary distractions, you must sit and think who you are. 'Who am I? Am I the body? No, how can it be? The qualities of the body and the qualities of the reality are completely different. Then, am I the mind? Am I the prana? Am I the buddhi? Am I the ego? Am I the five senses of action? Or the five senses of knowledge? Am I hunger? Am I passion? Am I pleasure? Am I pain?' You will have to analyze these different things vis-à-vis your inner spirit.

The Ultimate Reality is sat, chit and ananda. *Sat* means eternally existent, *chit* is eternal consciousness and *ananda* is bliss absolute. These three are the important categories of the Spirit. It is immortal and it is infinite. Therefore, you will have to compare everything else with the essential qualities of the Spirit. There has to be an incessant comparison that you will have to draw on. How do you draw this comparison? You have been told what the Spirit is like. Its qualities have been announced. Compare everything with that, and what will you find? You will find that there is nothing in this body, there is nothing in this mind, and there is nothing in the senses that can at all be identical.

There are two ways of comparison: One is the negative way, the other is the positive way. What it 'is' is the positive way, and what it 'is not' is the negative way. Thus contemplating on the truth by negative and positive ways, you come to the conclusion of experience.

There are many thinkers in this day and age who can talk a lot on this subject, but in their own life they are full of conflicts, they are filled with personal difficulties. That is the precise reason why I don't speak on this subject much, because I know it is a difficult way. The gurus talk to us about the two ways. One is the direct way; the other is the circuitous and circular way. Karma yoga, bhakti yoga, raja yoga are the circuitous ways, the long ways. Swami Sivananda used to say, "Surest, cheapest, best and easiest – but not the quickest." Self-enquiry is the quickest. It is a jet-set path, but it is not safe also. It is like walking on the razor's edge. If you fall, you can have a major accident, like falling from the airplane. So it is up to you to choose.

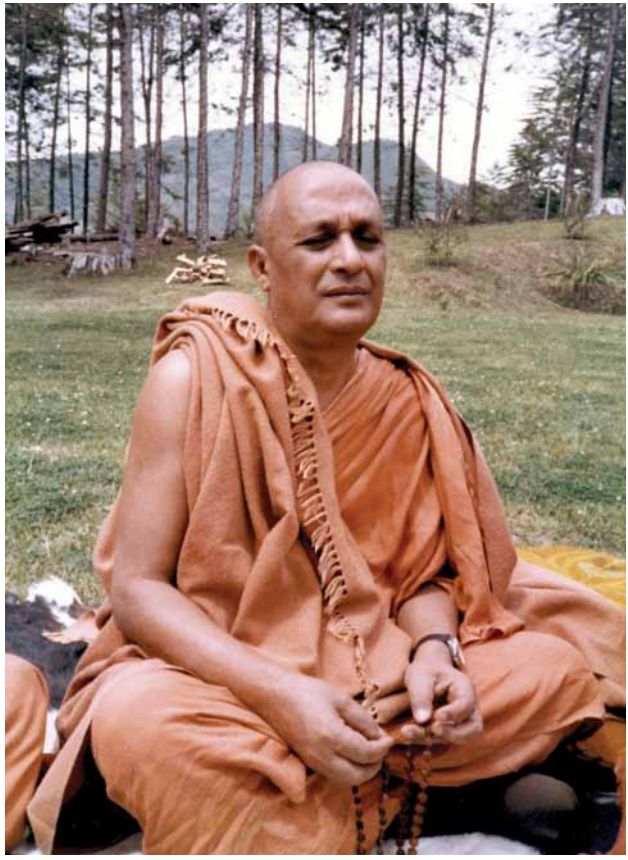

पूजा किसकी, नीराजन किसका,
मेरा - मेरा - मेरा।
मैं वेदों का मित्र इन्द्र हूँ
मैं हूँ ब्रह्मा देव सनातन,
किसकी पूजा ...
मेरी - मेरी - मेरी।
मैं क्यों जाऊँ मंदिर,
क्यों गंगा सागर जाऊँ,
मुझमें ही तो अनन्त सरोवर,
मेरी पूजा मुझसे ही करवाते हो,
कैसी विडम्बना कैसा ढोंग?
रोम-रोम में मेरे राम अनेकों,
कृष्ण अनेकों, रुद्र अनेकों,
मैं ही देवी, दुर्गा, काली,
फिर मुझसे जप करवाते हो।
मैं सब कुछ कर सकता हूँ,
मानव मन को रंग सकता हूँ,
पूजा किसकी, नीराजन किसका
मेरा - मेरा - मेरा।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

Two Levels of Swadhyaya

Swami Niranjanananda Saraswati

The foundations of change and a different lifestyle are built with swadhyaya. *Swadhyaya* is often translated as 'self-study', a process by which you can know yourself and realize; know your mind, emotions, nature, character and personality. This is the beginning of swadhyaya; however, there are two levels of self-observation. The first is study of oneself and the second is study of literatures that can more precisely deepen one's understanding and knowledge.

First, study you own self

In the first level you analyze yourself and come to know your shortcomings and weaknesses, qualities and strengths. You analyze yourself and try to bring about a balance in the extreme expressions of your nature and personality. Swadhyaya is not picking up a book and memorizing it; it is implementing and adopting what you know in your life. Once you know your strengths and weaknesses, you can balance them out and use your capabilities for a good cause. You can do something useful for society, inspire others and help them arrive at the right way of thinking. This is known as living according to dharma. This is what brings about peace, prosperity and happiness. When there is absence of dharma there is anarchy, suffering, struggle, hatred and conflict. All these things exist inside the mind, not outside. It is the mind

that connects with desires or with dharma. Therefore, the first change of mental direction is brought about with swadhyaya. Try to know yourself, try to understand your desires, the qualities you are trying to imbibe and the attainments you are aiming at.

When Sri Swamiji was to be initiated into sannyasa, he asked Swami Sivananda, "What do I do after sannyasa?" Swami Sivananda replied, "The same as you have been doing all this time. There is no change in lifestyle. The same seva, the same departments, the same routine; nothing changes. However, there is a difference. After you have taken sannyasa, your purpose should not be to accumulate karmas in your life, not to bind yourself to the world, rather to free yourself from karmas and the world. Therefore, when you perform an action, think that you are not performing it for yourself, think you are offering it to guru. This will make you free from the results and effects of the actions you perform. Over a period of time you will be able to exhaust your karmas, your aspirations, desires, ambitions and motivations. When you have exhausted your karmas, then embark upon a new life."

Swami Sivananda used the phrase 'exhaustion of karma'. What is this exhaustion of karma? It is the change of the operating system, and this change will come about with swadhyaya, which begins with the discovery of your own nature and character.

Second, imbibe spiritual wisdom

The second level of swadhyaya is the input of wisdom to the mind. In the novice stage of life, the *brahmachari* stage, you studied history, geography and math. You gave exams and passed them to move on to the next class. In the same manner, at this level of swadhyaya you must read, imbibe and understand the literature and scriptures that elucidate spiritual life. By reading these texts you begin to understand yourself from a different perspective. In the beginning this understanding may not be perfect, yet what has begun will start to mould your

thoughts, ideas and concepts, which eventually give you a different perspective and vision.

Thus swadhyaya has to be seen in two main categories: the study of one's own character, nature and personality, and the study of literature and scriptures by which one strengthens spiritual understanding and awareness. When you study the spiritual sciences and continue self-study at the same time, you are able to live what you read. You watch how you live and acknowledge what the sages have prescribed. Thus what you know and what you do become one.

स्वान साधना से स्वयं को जानना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

मानसिक संयम अर्जित करने के लिए मन का अवलोकन आवश्यक है, और मन के अवलोकन का सबसे अच्छा तरीका अपने विचारों या मानसिक गतिविधियों को देखना नहीं, बल्कि अपने सामर्थ्यों, कमजोरियों, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं को जानना है। यह तरीका स्वान (SWAN) साधना के नाम से जाना जाता है।

स्वान सिद्धांत

सामर्थ्य (स्ट्रेन्थ) जीवन की सकारात्मक और सात्त्विक शक्तियों के प्रतीक हैं। कमजोरियाँ (वीकनेस) उन तामसिक बन्धनों और सीमाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं जिनसे तुम उबर नहीं पाते। महत्त्वाकांक्षाएँ (एम्बीशन्स) राजसिक प्रवृत्तियों की प्रतीक हैं और आवश्यकताएँ (नीड्स) तीनों का समन्वित, सन्तुलित रूप हैं।

सामान्य जीवन में हम अपनी कमजोरियों और महत्त्वाकांक्षाओं के प्रति ही अधिक सजग होते हैं। हमारा मन अपेक्षाओं और वासनाओं के पीछे भागता है। जैसे भूखा आदमी भोजन के पीछे भागता है, जैसे थका हुआ आदमी शैय्या की कामना करता है, वैसे ही मन जब तक सक्रिय है, वह संसार से जुड़ने की ही कामना करता है, सांसारिक भोगों को पाने की ही कामना करता है। जब हम अपनी मनोवांछित चीज नहीं प्राप्त कर पाते, तब अपनी सीमाओं और कमजोरियों के प्रति सजग बनते हैं, और वे हमें विषाद और निराशा की ओर खींच ले जाती हैं।

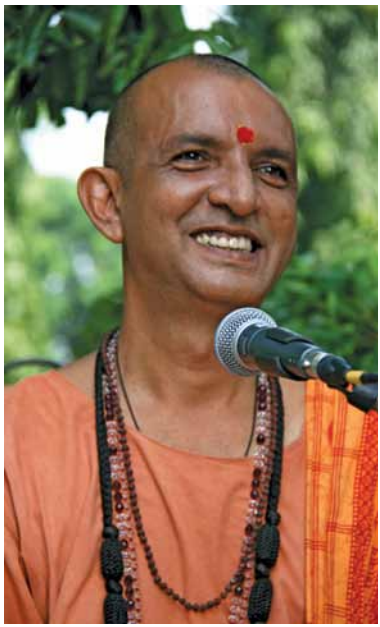

हमें मन को सामर्थ्यों, कमजोरियों, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं की दृष्टि से देखना है। हर व्यक्ति के जीवन में, मन में कुछ क्षमताएँ, कुछ प्रतिभाएँ होती हैं। इन्हीं क्षमताओं और प्रतिभाओं के कारण जीवन में हमारी अपनी पहचान होती है। किसी प्रतिभा या क्षमता को देखकर हम कहते हैं कि अमुक व्यक्ति बहुत अच्छा है, या बहुत सजग है, जागरूक है, सहयोग देता है या प्रेम करता

है। क्षमता और प्रतिभा को देखकर हम किसी व्यक्ति की पहचान बनाते हैं। तुम अच्छे हो या बुरे हो, इसका ज्ञान हमें कैसे होगा? तुम्हारी प्रतिभा और क्षमता ही हमें यह जानकारी दिलाएगी। तुम्हारी प्रतिभा तुम्हारी कार्यशैली और चिंतनशैली में दिखलाई देगी। उसी से हम निर्णय पर पहुँचेंगे कि तुम कैसे व्यक्ति हो। अगर तुम अपने मन की प्रतिभाओं को विकसित कर पाते हो, तो तुम अपने भीतर सत्त्व के स्तर को बढ़ा रहे हो। तुम ऐसे गुण अर्जित कर रहे हो जो तुम्हें विकास की दिशा में ले जाएँगे।

कमजोरी एक सीमा को दर्शाती है, जिसके आगे हम बढ़ नहीं पाते। एक बार चिंतन करो कि तुम्हारे जीवन में कौन-कौन सी कमजोरियाँ हैं। अगर तुम्हारे अन्दर असुरक्षा की भावना या क्रोध या वासना प्रबल है, तो मान लो कि तुम में तमोगुण प्रबल है। ये सब कमजोरियाँ मनुष्य के जीवन को विकसित होने से रोकती हैं और एक सीमा के भीतर ही मनुष्य की भावना को घुमाती रहती हैं। सीमाएँ और कमजोरियाँ तामसिक हैं। कमजोरियों से जुड़ने पर तुम तामसिक बनते हो, जबकि प्रतिभाओं से जुड़ने पर सात्त्विक।

इसी प्रकार मन की एक अन्य स्थिति होती है महत्त्वाकांक्षाओं की। हर व्यक्ति अपने जीवन में कुछ महत्त्वाकांक्षाओं को लेकर चलता है। अपने परिवार के लिए अथवा अपने लिए महत्त्वाकांक्षाएँ रहती ही हैं। लेकिन बहुत बार हमारी बुद्धि सांसारिक वृत्तों में फँसी होती है और हम निर्णय नहीं ले पाते कि हमारी महत्त्वाकांक्षा हमारे लिए हितकर है या अहितकर, उपयोगी है या अनुपयोगी। बहुत बार हम अपनी महत्त्वाकांक्षा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। जब हमारी महत्त्वाकांक्षा जीवन का लक्ष्य बनती है, तब हम भौतिक वृत्ति में और फँस जाते हैं। महत्त्वाकांक्षाएँ रजोगुण को अधिक प्रबल बनाती हैं।

इस प्रकार तमोगुण हमारे जीवन में कमजोरी है, रजोगुण महत्त्वाकांक्षा और सत्त्वगुण प्रतिभा, तथा तीनों गुणों की जो साम्यावस्था है, वह है जीवन की आवश्यकता। हमारे जीवन में भोजन, वस्त्र, आदि की जो आवश्यकता है, वह न तो तमोगुण है, न रजोगुण और न ही सत्त्वगुण। वह मात्र एक आवश्यकता है। राजा को भी वस्त्र चाहिए और फकीर को भी। किस प्रकार का वस्त्र, वह बात अलग है। लेकिन वस्त्र की आवश्यकता हर व्यक्ति को है। आहार हर व्यक्ति की आवश्यकता है। रोटी, कपड़ा और मकान, यह हर व्यक्ति की आवश्यकता है, चाहे वह राजा हो या रंक। एक साधु को भी लंगोटी के लिए वस्त्र चाहिए ही, पेट भरने के लिए सूखी रोटी चाहिए ही, शरीर को सूखा रखने के लिए एक छत चाहिए ही। यह तो हर व्यक्ति की आवश्यकता है और आवश्यकता में तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं। वहाँ पर न तमोगुण है, न रजोगुण और न सत्त्वगुण।

इन आवश्यकताओं में महती आवश्यकता रजोगुणी हो जाती है। जैसे, कपड़ा हमारी आवश्यकता है, लेकिन अगर बाजार जाकर हम फैशन वाला कपड़ा खरीदते

हैं तो वह रजोगुण है। हमें जूता चाहिए। एक सामान्य जूता नहीं, हमें महँगा वाला ही चाहिए। यह रजोगुण है। आवश्यकता अपने आप में साम्यावस्था है, लेकिन उसमें जब महत्त्वाकांक्षा जुड़ जाती है तब वह रजोगुणी हो जाती है।

ये चार अवस्थाएँ मन को विचलित करती हैं, मन की शांत अवस्था में अनेक प्रकार के वृत्तों को जन्म देती हैं जो हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। इसलिए मानसिक संयम का पहला चरण है इन अवस्थाओं को पहचानना और इनके प्रति सजग बनना।

व्यावहारिक साधना

इन अवस्थाओं को पहचानो, समझो और सम्भालो। सप्ताह में एक बार समय निकालकर किसी एकांत स्थान में चार कागज लेकर बैठ जाओ। पहले कागज पर अपने सामर्थ्यों, अपने गुणों को लिखो। दूसरे कागज पर अपनी कमजोरियों को लिखो। तीसरे कागज पर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं, अभिलाषाओं और अपेक्षाओं को लिखो। चौथे कागज पर अपनी आवश्यकताओं को लिखो। ये तुम्हारे जीवन की वास्तविक आवश्यकताएँ होनी चाहिए, कामनाएँ नहीं। इस सूची को कालान्तर में बढ़ाते जाओ। यह काम एक दिन में पूरा नहीं होगा। मुझे अपनी सूची बनाने में कई महीने लगे। एक सप्ताह मैं कोई एक चीज जोड़ता, फिर अगले सप्ताह जब विश्लेषण करता तो सोचता, 'नहीं, यह सही नहीं है। मुझे यह चीज यहाँ से हटाकर दूसरी सूची में डालनी चाहिए। यहाँ कुछ और आना चाहिए।' इस प्रकार तुम भी अपने सामर्थ्यों, कमजोरियों, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं का विश्लेषण करो। इसमें समय जरूर लगेगा। हो सकता है एक महीना लगे, हो सकता है दो-तीन महीने लगें। लेकिन धीरे-धीरे तुम अपने स्वभाव और चरित्र के बारे में बहुत कुछ जानने लगोगे। तुम अपने सामर्थ्यों के प्रति सजग बनोगे और जीवन की ऐसी परिस्थितियों में, जहाँ तुम्हारी कमजोरियाँ उजागर होती हैं, वहाँ तुम उन कमजोरियों के प्रतिपक्ष सामर्थ्यों का प्रयोग कर उन परिस्थितियों का बेहतर ढंग से सामना कर पाओगे।

यह ज्ञानयोग का व्यावहारिक अभ्यास है। ज्ञानयोग मात्र यह प्रश्न करना नहीं है कि मैं कौन हूँ, बल्कि अपनी त्रुटियों को पहचानकर उन्हें सुधारने का प्रयास है, अपने सामर्थ्यों को पहचानकर उन्हें विकसित करने का प्रयत्न है। जब तुम इस प्रकार की सूची बना लेते हो तो एक सप्ताह के लिए किसी एक सामर्थ्य और किसी एक कमजोरी को चुन लो। सप्ताहभर सजग रहो कि वह कमजोरी तुम्हें कब प्रभावित करती है और कब तुम अपने उस सामर्थ्य का उपयोग कर पाते हो। इस तरह का साप्ताहिक अभ्यास करने से तुम पाओगे कि सालभर में तुम्हारे चरित्र में अनेक सकारात्मक परिवर्तन आ गए हैं।■

'The Lesson I Learnt in 2013'

Looking within

In the light of just being here, I saw my own illusions and expectations in 2013. I have been them for so long but I did not know that. I hit my head on my own closed doors. From those mistakes I discovered that there is always a way out, no matter how difficult the moments or how cloudy the mind. If I never ever lose hope, if I keep walking no matter how many times I fall, if I put all I have into it, one day I will see the open door. However, to pass through it, I need to not only see it, but to have conviction, faith and strength to walk the steps no matter what.

I asked myself: is life unfair and cruel, making me face the weak things inside me, or am I cruel with myself being closed and selfish all the time? I saw how ignorant I was to behave as if I am the centre of the universe – thinking all the time what I am doing, how I am feeling, what is happening to me – without asking myself: 'Have I ever thought where I stand in my evolution? How many miles are left to go? What is the milestone on the journey that I have to complete?'

I learnt that life is not running after the soapy bubbles in front of my eyes or in my mind, no matter whether they are colourful or full of smoke. There is something very deep, precious, and significant in this life that has to be cherished. And I have to be careful and alert . . . to know what is needed in every moment. Never to fight with the walls which I meet on the way, but to flow like the water does, and to smile. To be open and true to what is most dear to me. To be sincere, serious and committed to what I believe in life. Life is not to expect, demand and crave, but to believe, to try to reach out and to connect. Not to dream about beautiful horizons and to wish to be someone that I am not, but to accept myself and to try to become better every day.

–Jignasu Indrani, Sannyasa Trainee, Bulgaria

The Universal Message of the Upanishads

KENOPANISHAD

Yasyaamatam tasya matam matam yasya na Veda sah;
Avijnaatam vijaanataam vijnaatamavijaanataam.

It is known by him who thinks he knows not; he who thinks he knows, does not know. It is unknown to those who know, and known to those who do not know. (2:1:3)

MUNDAKOPANISHAD

Dhanurgriheetvaupanishadam mahaastram sharam hyupaasaanishitam sandhayeeta;
Aayamya tadbhaavagatena chetasaa laksyam tadevaaksharam somyaviddhi.

Having taken the bow supplied by the Upanishads, the great weapon, and fixed it in the arrow sharpened by incessant meditation, and having drawn it with the mind fixed on Brahman, hit, O gentle youth, at that mark, the immortal Brahman. (2:2:3)

SHVETASVATARA UPANISHAD

Te dhyaanayogaanugataa apashyan devaatmashaktim svagunairnigoodhaam;
Yah kaaranaani nikhilaani taani kaalaatmayuktaani adhistishthatyekah.

They who practised meditation realized or saw as the cause of creation the power of God hidden in His own qualities, which alone rules over all these causes, beginning with time and ending with the individual soul. (1:3)

AMRITABINDU UPANISHAD

Svarena sandhayed yogam asvaram bhaavayetparam;
Asvarenaanubhaavena bhaavo vaa'bhaava Ishyate.

One should unite one's mind with the higher, first taking the sound of Om. Then one should meditate on the Supreme as the Reality beyond sound. Realizing the Truth beyond sounds, the illusory world is realized as the Real. (v. 7)

Granthamabhyasya medhaavi jnaanavijnaanatatpara;h
Palaalamiva dhaanyaarthee tyajed granthamasheshatah.

The intelligent student, after studying the vedic texts, is solely intent on acquiring wisdom and realization. He should discard the texts altogether, as the man who seeks rice discards the husk. (v. 18)

ANANDABINDU UPANISHAD

Vatsa upanishadupadesheshu guruvaakyshu cha shraddhasvaa
Buddhih pramaadakaarinee nighnakaree syaat
Tvam shuddhachaitanyam sarvadaa svatantrah tvamakshayah aatmaa
Evam pratipadya saanandah svacchandam sanchara.

Have implicit faith, my child, in the teachings of the Upanishads and the words of the guru. Intellect is a hindrance. Do not delude yourself here. You are the pure consciousness. You are ever free. You are the immortal Self. Now realize this and roam about happily. (v. 14)

ADVAITAMRITA UPANISHAD

Bahirantashchordhvam cha purashcha pashchaat parshvayoshcha vaa'kaashavat;
Sarvato vyaapya tishthati so'yam chidaakaashah.

Brahman is within and without. He is above and below. He is in front and behind. He is in your right side and left side. He is everywhere, like all-pervading ether. He is chidakasha, ether of consciousness. (v. 2)

VEDANTA-SARA UPANISHAD
(Shanti Mantra)

Om vaang me manasi pratishthitaa mano me vaachi pratishthitam aaviraavirma edhi; vedasya ma aaneesthah shrutam me maa prahaaseeh; Anenaadheetenaahoraatraansamdadhaamyritam vadishyaami satyam vadishyaami; Tanmaamavatu tadvaktaaramavatu avatu maamavatu vaktaaramavatu vaktaaraam.

Om Shantih Shantih Shanthih!

Om! My speech is rooted in my mind, my mind is rooted in my speech; Brahman, reveal Thyself to me. Ye mind and speech, enable me to grasp the Truth that the scriptures teach. Let what I have heard slip not from me; I join day with night in study, I think the Truth, I speak the Truth; May that protect me, may that protect the teacher, protect me, protect the teacher, protect the teacher.

Om Peace! Peace! Peace!

प्रश्नोत्तर-रत्न-मालिका

जगद्गुरु श्री आदिशंकराचार्य की गुरु-शिष्य संवाद रूपी इस रचना में अनेक आध्यात्मिक प्रश्नों का समाधान सूत्र रूप में दिया गया है। यह संवाद साधकों के चिंतन, मनन और स्वाध्याय के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, इस आशा के साथ यह यहाँ धारावाहिक रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है। *गतांक से आगे. . .*

विद्युद्विलसितचपलं किं दुर्जनसंगतिर्युवतयश्च।
कुलशीलनिष्प्रकंपा: के कलिकालेऽपि सज्जना एव॥23॥

प्र–बिजली के समान चपल क्या है?
उ–दुष्टों की संगति और युवती स्त्रियाँ।
प्र–घोर कलिकाल में भी कुल एवं शील की दृष्टि से अचल कौन है?
उ–सज्जन महापुरुष।

चिन्तामणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि तच्चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो विधूततमसो विशेषेण॥24॥
दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
वित्तं त्यागसमेतं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम्॥25॥

प्र–चिन्तामणि के समान इस लोक में दुर्लभ क्या है?
उ–चतुर्भद्र।
प्र–अज्ञान से रहित विद्वान् लोग विशेष रूप से चतुर्भद्र किसे कहते हैं?
उ–प्रियवाणी सहित दान, गर्व से रहित ज्ञान, क्षमा से युक्त शौर्य और त्याग से युक्त धन, इन चारों को कल्याण का साधन होने से चतुर्भद्र कहते हैं।

किं शोच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्तमौदार्यम्।
क: पूज्यो विद्वद्भि: स्वभावत: सर्वदा विनीतो य:॥26॥

प्र–शोक करने योग्य क्या है?
उ–वैभव होने पर भी कृपणता।
प्र–प्रशंसा करने योग्य क्या है?
उ–उदारता।
प्र–विद्वानों द्वारा पूजनीय कौन है?
उ–जो स्वभाव से सर्वदा विनयशील है।

कः कुलकमलदिनेशः सति गुणविभवेऽपि यो नम्रः।
कस्य वशे जगदेतत्प्रियहितवचनस्य धर्मनिरतस्य॥27॥

प्र–कुलरूपी कमल को सूर्य के समान प्रफुल्लित करने वाला कौन है?
उ–विद्या, दया आदि दैवीगुणरूपी विभव होने पर भी जो नम्र है।
प्र–यह समस्त जगत् किसके वश में है?
उ–जो धर्म में निरत है और प्रिय एवं हितकर वाणी बोलता है, उसके।

विद्वन्मनोहरा का सत्कविता बोधवनिता च।
कं न स्पृशति विपत्तिः प्रवृद्धवचनानुवर्तिनं दान्तम्॥28॥

प्र–विद्वानों के भी मन को हरने वाली कौन है?
उ–ईश्वरमहिमायुक्त उदात्त कविता और ब्रह्मविद्या रूपी महिला।
प्र–विपत्ति किसको स्पर्श नहीं करती?
उ–जो जितेन्द्रिय यानी संयमी है, और ज्ञानवृद्ध, धर्मवृद्ध आदि महापुरुषों के उपदेशों के अनुसार चलने वाला है।

कस्मै स्पृहयति कमला त्वनलसचित्ताय नीतिवृत्ताय।
त्यजति च कं सहसा द्विजगुरुसुरनिन्दाकरं च सालस्यम्॥29॥

प्र–लक्ष्मी किसे पसन्द करती है?
उ–जिसके चित्त में आलस नहीं है और जो नीति से युक्त है।
प्र–लक्ष्मी सहसा किसको छोड़ देती है?
उ–जो आलसी है और ब्राह्मण, गुरु तथा देवताओं की निन्दा करता है।

कुत्र विधेयो वासः सज्जननिकटेऽथवा काश्याम्।
कः परिहार्यो देशः पिशुनयुतो लुब्धभूपश्च॥30॥

प्र–कहाँ निवास करना चाहिये?
उ–सज्जन महापुरुषों के समीप अथवा काशीधाम में।
प्र–किस देश को छोड़ देना चाहिये?
उ–जो देश चुगलखोरों और लोभी राजा से युक्त है।

केनाशोच्यः पुरुषः प्रणतकलत्रेण धीरविभवेन।
इह भुवने कः शोच्यः सत्यपि विभवे न यो दाता॥31॥

प्र–किससे मनुष्य शोकरहित होता है?
उ–नम्र-सरल सती स्त्री और धैर्ययुक्त पराक्रम से।

प्र–इस संसार में शोचनीय कौन है?
उ–वैभव होने पर भी जो दान नहीं करता।

किं लघुताया: मूलं प्राकृतपुरुषेषु या याञ्चा।
रामादपि क: शूर: स्मरशरनिहतो न यश्चलति॥32॥

प्र–छोटेपन की जड़ क्या है?
उ–विषयी-पामर मनुष्यों से याचना करना।
प्र–भगवान राम से भी शूरवीर कौन है?
उ–जो कामदेव के बाण से ताड़ित होने पर भी चलायमान न हो।

किमहर्निशमनुच्चिन्त्यं भगवच्चरण न संसार:।
चक्षुष्मन्तोऽप्यन्धा: के स्युर्ये नास्तिका मनुजा:॥33॥

प्र–दिनरात किसकी चिन्ता करनी चाहिये?
उ–भगवान के परम पावन चरण-कमलों की।
प्र–किसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये?
उ–संसार की।
प्र–चक्षु होने पर भी अन्धे कौन हैं?
उ–नास्तिक मनुष्य (जो ईश्वर, वेद एवं परलोक में विश्वास नहीं करते)।

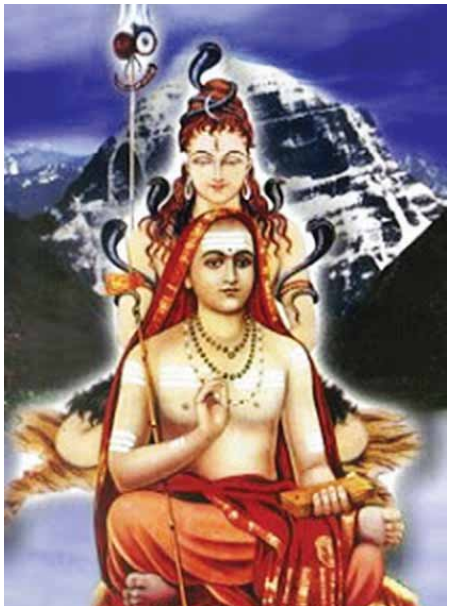

Swadhyaya Meditation

Achintyamavyaktamanantaroopam sivam
prasaantamamrutam brahmayonim;
Tathaadimadyaanta viheenamekam vibhum
chidananda marropamadbhutham.

The Unthinkable, the Unmanifest, the One of endless forms, the Ever-auspicious, the Peaceful, the Immortal, the Origin of the very Creator, the One without a beginning, a middle, and an end, the only One, the All-pervading; the Knowledge-Bliss, the Formless, Wonderful.

– *Kaivalya Upanishad*

After your daily mantra sadhana, sit for a few moments in silence. The body should be established in a comfortable, steady posture and the mind should be calm and free of distractions. Be aware of the peace created by the mantra chanting.

When you are ready to begin, read the above passage from the *Kaivalya Upanishad*. Read it over with your full awareness, and know that it is a description of pure Consciousness, the source of your existence and everything around you. It is a description of your true, perfect Self. Read it again, three or four times more, so the words leave a lasting impression.

Then close your eyes and begin to chant the mantra *Om*. You can chant aloud or silently, but either way you should feel totally consumed by the mantra. After some time, cease chanting and see if you can make contact with the meaning of this sacred verse. Do not try to understand it with the mind, for it is beyond the grasp of logic. In this practice you must abandon thought altogether, and instead search for understanding in the place where your most noble emotions dwell, in what the Upanishads call the 'cave of the heart.'

A cave is a cool and quiet place, safe and protected from the outside world. Draw the awareness to the heart space and enter into this cave. It may be dark to begin with, but slowly you will

begin to see a tiny glowing light. It burns without a source, and as you continue to focus on it, it becomes increasingly bright and luminous, filling the entire cave with its radiance. This light will help you find the knowledge and understanding you long for.

With the aid of this light you can experience the reality that lives beyond thought and idea. What is the nature of the Self, the Atman? Experience with the fullness of your being the Unthinkable, the Unmanifest, the One of many forms. Stay inside the experience and do not allow the mind to dwell, for this will lead you to thinking. Simply be, and allow yourself to experience the part of you that is Ever-Auspicious and Peaceful. Bask in this glory. You are immortal, the beginningless and endless all-pervading Self, which is pure knowledge and bliss. Let the limited self merge with this, your true, perfect, unlimited Self.

You may rest in it for as long as you wish. When you are ready to end this practice, allow the light to fade and draw the awareness to the breath. Become aware of the breath, the body, the surroundings, all of which are but parts of one divine truth. Offer mental thanks to your guru, who is your faithful guiding light, and chant the mantra *Om* three times aloud. Gently open your eyes and re-enter the world with greater wisdom and understanding. ■

Yoga Publications Trust

Satyam Tales

Satyam Tales depict the life and teachings of our beloved guru, Sri Swami Satyananda Saraswati. Through the medium of these simple narratives, we hear the voice of Sri Swamiji inspiring one and all. The stories are a delightful read for children, adults and old alike, conveying an invaluable message for those engaged in the world and for those seeking the spirit. These tales will touch your heart and give you joy, hope, conviction and, above all, faith.

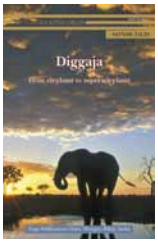

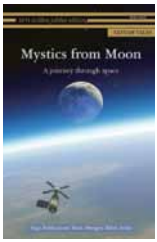

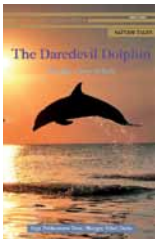

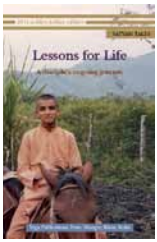

For an order form and comprehensive publications price list, please contact:
Yoga Publications Trust,
Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811 201, India
Tel: +91-6344 222430 , Fax: +91-6344 220169

A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request.

हरि ॐ

सत्य का आवाहन एक द्वैभाषिक, द्वैमासिक पत्रिका है जिसका सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जा रहा है। इसमें श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एवं स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की शिक्षाओं के अतिरिक्त संन्यास पीठ के कार्यक्रमों की जानकारियाँ भी प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी योगमाया सरस्वती
सह-सम्पादक – स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती

संन्यास पीठ, द्वारा–गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, हरियाणा में मुद्रित।

© Sannyasa Peeth 2014

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं। कृपया आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

संन्यास पीठ
द्वारा–गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201,
बिहार, भारत

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कवर फोटो : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, पादुका दर्शन, मुंगेर

अन्दर के रंगीन फोटो : 1–8: सत्यमेश्वर महादेव, पादुका दर्शन, मुंगेर

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHBIL/2012/44688

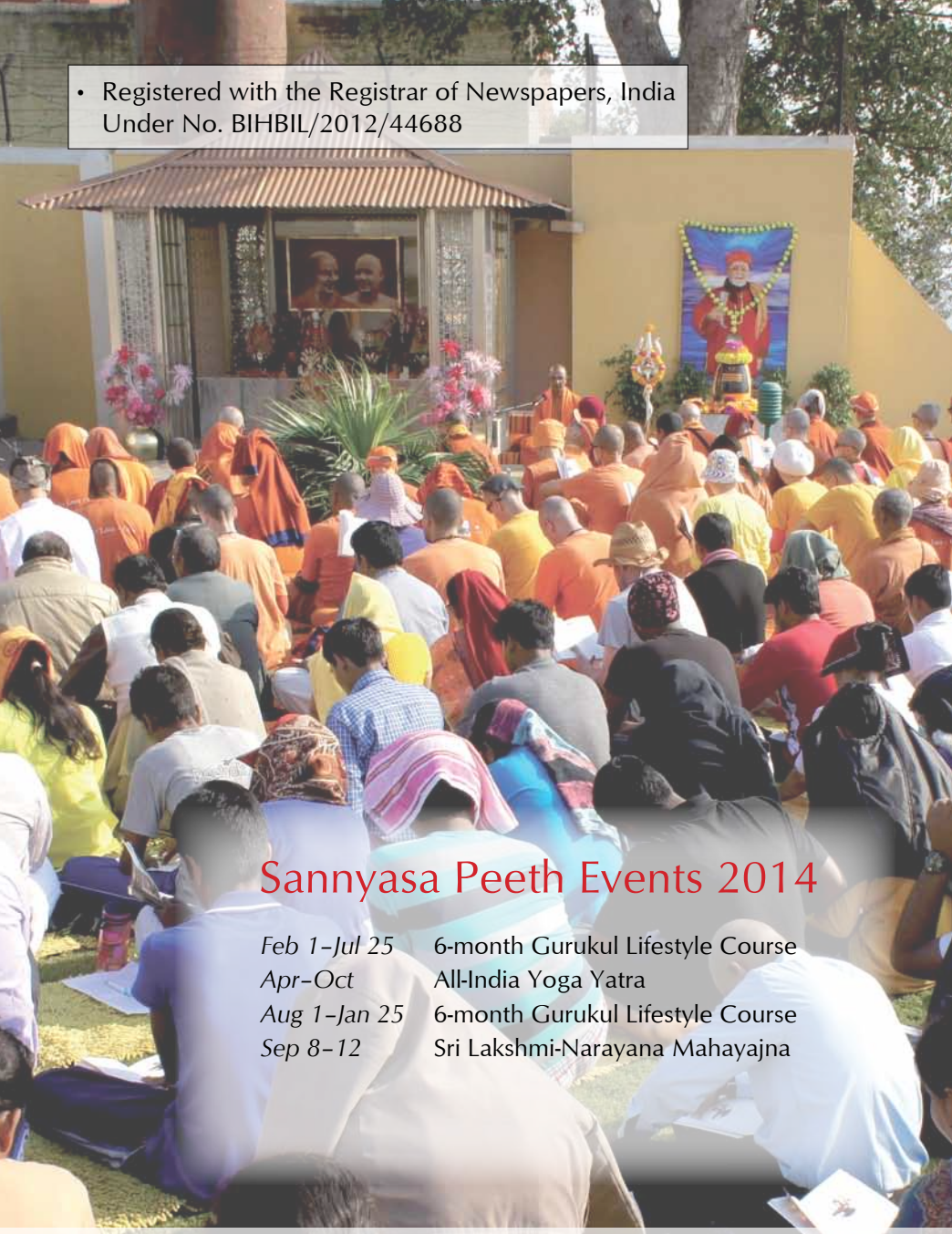

Sannyasa Peeth Events 2014

Feb 1–Jul 25	6-month Gurukul Lifestyle Course
Apr–Oct	All-India Yoga Yatra
Aug 1–Jan 25	6-month Gurukul Lifestyle Course
Sep 8–12	Sri Lakshmi-Narayana Mahayajna

For more information on the above events, contact:

Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Munger, Bihar 811201, India
Tel: 06344-222430, 06344-228603, 09304799615 Fax: 06344-220169
Website: www.biharyoga.net

✉ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request